ताब्दी प्रकाशन

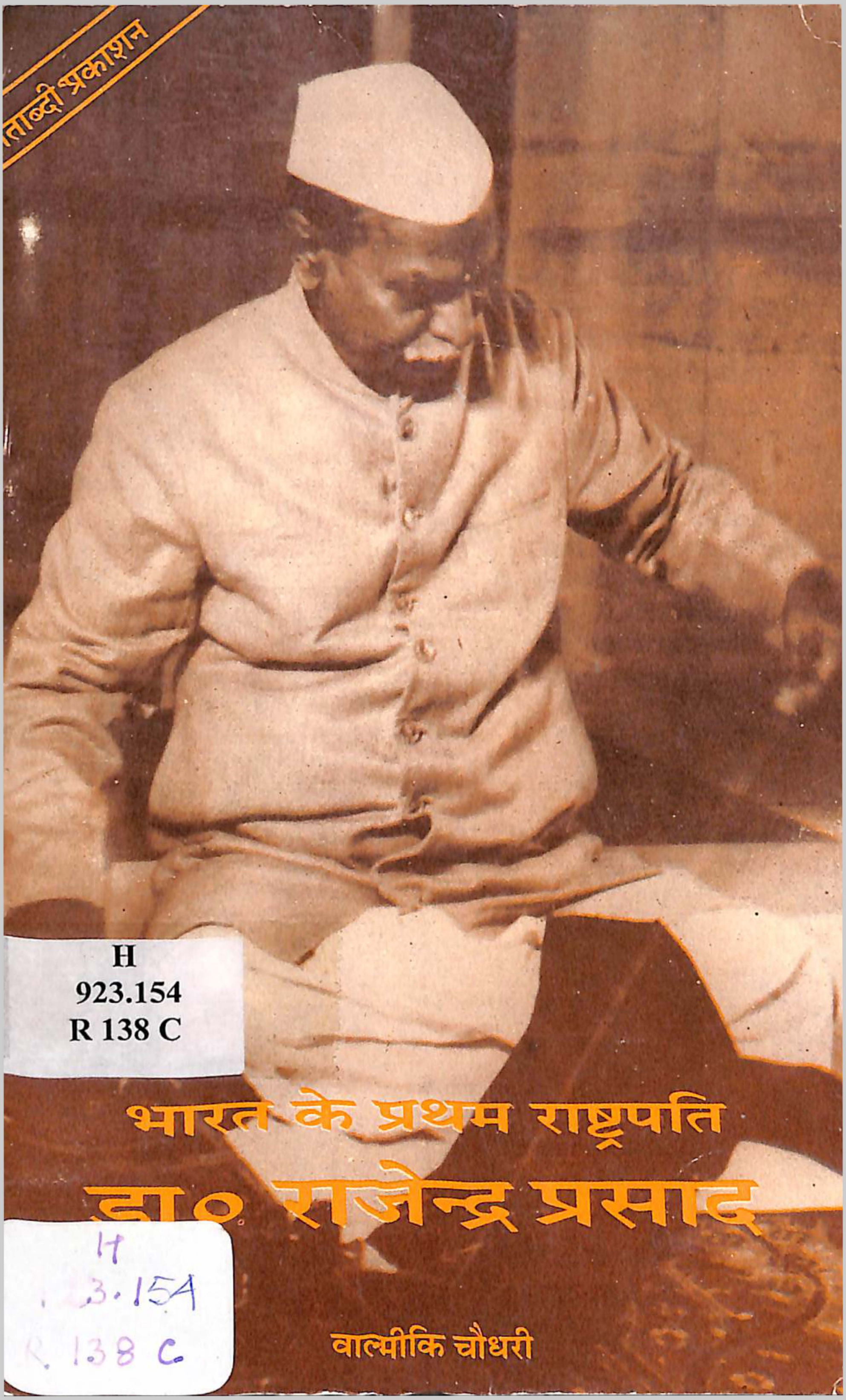

H
923.154
R 138 C

भारत के प्रथम राष्ट्रपति

डा० राजेन्द्र प्रसाद

H
.3.154
R. 138 C

वाल्मीकि चौधरी

Library IIAS, Shimla
H 923.154 R 138 C
00091273

923.154
R 138 C

Indian Institute of Advanced Study
91273
23-2-99

पहला संस्करण 1984 (शक 1906)
तीसरी आवृत्ति 1990 (शक 1912)
© वाल्मीकि चौधरी, 1984
Bharat Ke Pratham Rashtrapati
Dr. Rajendra Prasad (*Hindi*)
रु. 8.50
निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित।

विषय-सूची

1	पैतृक देन	1
2	बचपन	3
3	प्रारम्भिक शिक्षा	6
4	विद्यार्थी जीवन	9
5	प्रेसिडेन्सी कालिज कलकत्ता में	12
6	जीवन के चौराहे पर	14
7	गांधीजी के कदमों पर	24
8	मशहूर वकील	30
9	असहयोग आन्दोलन-बनाम सेवा के क्षेत्र में	33
10	बिहार भूकम्प	38
11	कांग्रेस अध्यक्ष	42
12	अंतिम जेल-जीवन	46
13	स्वराज्य की ओर	49
14	संविधान सभा की अध्यक्षता	51
15	भारत के प्रथम राष्ट्रपति	55
16	अंतिम समय	60

1. पैतृक देन

बिहार में एक जिला है सिवान। सिवान जिले के अन्तर्गत जीरादेई गाँव में विक्रमी संवत् 1941 की अगहन की पूर्णिमा तदनुसार 3 दिसम्बर 1884 को राजेन्द्र प्रसाद का जन्म हुआ। पिता का नाम था बाबू महादेव सहाय। बाबू महादेव सहाय के पाँच संतानें हुईं — तीन लड़कियां, दो लड़के। राजेन्द्र प्रसाद सबसे छोटे थे।

बाबू महादेव सहाय के पिता मिश्री लाल हथुआ राज के दीवान थे। एक समय ऐसा आया कि हथुआ राज कोर्ट आफ वार्ड में चला गया। फिर वह गोरखपुर के तमकुही राज्य के दीवान हो गये। वे बड़े दबंग आदमी थे और राज-काज में बड़े कुशल थे। उनके निधन के बाद परिवार का सारा बोझ बाबू महादेव सहाय के कन्धों पर आ पड़ा। वे बहुत गंभीर और शीलवंत व्यक्ति थे। सदा दीन-दुखियों की सहायता सेवा में तत्पर रहते थे। उन्होंने अपने परिश्रम और व्यवहार-कुशलता से परिवार को हर तरह से ऊंचा उठाया। उन्होंने अपने बच्चों का लालन-पालन बड़ी सावधानी से किया। उन्हें संस्कारवान बनाने में कोई कसर बाकी न रखी।

बाबू महादेव सहाय की सबसे बड़ी संतान थी भगवती देवी। उन्होंने भगवती देवी की शादी बड़ी धूम-धाम से की। उनके परिवार में यह बहुत दिनों के बाद, बल्कि पीढ़ियों बाद किसी लड़की की शादी थी। इसलिए यह शादी बड़े उत्साह और उमंग से की गई। पर दुर्भाग्यवश शादी के कुछ समय बाद ही भगवती देवी छोटी उम्र में ही विधवा हो गई। यह एक गहरी चोट थी।

विधवा होने के बाद भगवती देवी जीरादेई में ही रहने लगीं। ईश्वर-भक्ति, पूजा-पाठ, व्रत-तीर्थाटन में अपना समय व्यतीत करती रहीं। जीवन भर उस परिवार ने भगवती देवी को सिर आँखों पर रखा। अपमान तो दरकिनार, उन्हें किसी ने कोई कड़वी बात भी नहीं कही। बड़ी होने के नाते पितृ-परिवार की मालकिन की तरह रहीं। किसी ने उनका हाथ नहीं रोका, न ही किसी ने उनके सामने अपनी जबान खोली। जब राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति हो गये तब भगवती देवी भी राष्ट्रपति भवन में रहने लगीं। मृत्यु-पर्यन्त वे वहीं रहीं। उनका निधन 26

जनवरी 1956 को प्रातःकाल राष्ट्रपति भवन में हुआ।

भगवती देवी का कुछ विस्तार से उल्लेख यह बताने के लिए किया गया है कि राजेन्द्र प्रसाद के परिवार में विधवा को उस दृष्टि से नहीं देखा गया जैसे उसे साधारणतया देखा जाता है। हिन्दु परिवार में, विशेषतया कट्टर सनातनी परिवार में विधवा को पग-पग पर घोर अपमान और मानसिक यातना सहनी पड़ती है। मांगलिक अवसरों पर उसकी उपस्थिति अशुभ मानी जाती है। परन्तु राजेन्द्र प्रसाद के परिवार ने अपनी विधवा बेटी को भरपूर सम्मान दिया — इतना सम्मान कि वह अपनी वैधव्य व्यथा भूल गई।

आदर्श भाई

राजेन्द्र प्रसाद के बड़े भाई का नाम था महेन्द्र प्रसाद। महेन्द्र प्रसाद अपने माता-पिता की चौथी संतान थे। वे सही अर्थों में राजेन्द्र प्रसाद के अग्रज थे। वे राजेन्द्र प्रसाद से आठ साल बड़े थे। महेन्द्र प्रसाद राम थे तो राजेन्द्र प्रसाद लक्ष्मण और भरत के समान अपने अग्रज के आज्ञाकारी बने रहे। महेन्द्र प्रसाद ने सदा अपने छोटे भाई का पथ-प्रदर्शन किया। उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। अपनी ज़िन्दगी में घर-गृहस्थी की चिन्ता से अलग रखा। राजेन्द्र प्रसाद ने जब जैसी इच्छा प्रकट की, महेन्द्र बाबू ने उसे प्राणपण से पूरा किया। उधर राजेन्द्र प्रसाद ने भी अपने अग्रज का सदा सम्मान किया। अपनी हर समस्या उनके सामने रखी। हर काम में उनकी राय मांगी। महेन्द्र प्रसाद के निधन के बाद राजेन्द्र प्रसाद के सामने घर-परिवार सम्भालने की समस्या आयी। तब मालूम हुआ कि, दो लाख का कर्ज है। वैसी हालत में राजेन्द्र प्रसाद ने सर्वप्रथम कर्ज चुकाना ही अपना कर्तव्य समझा।

बाबू महादेव सहाय की शेष दो संतानों की चर्चा करना हमारा अभिप्रेत नहीं। ये दोनों लड़कियां थीं। एक तो बचपन में ही गुजर गई। दूसरी, अनारकली देवी, तीस वर्ष की अवस्था में गुजर गई।

राजेन्द्र प्रसाद के परिवार की कुछ विस्तार से चर्चा इसलिए की गई है कि उनके चरित्र की पृष्ठभूमि समझने के लिए यह जरूरी समझा गया। परिवार का व्यक्ति पर बहुत प्रभाव पड़ता है। परिवार ही उसे संस्कार देता है। उसका विकास बहुत कुछ परिवार की परंपरा पर ही निर्भर होता है। विशेषकर, सम्मिलित परिवार के उस युग में, व्यक्ति के निर्माण में परिवार का एक विशेष योगदान रहा है।

"हमारी सन्तान के लिए मस्तिष्क की स्फूर्ति को बढ़ाने का उपाय मातृभाषा के अध्ययन से बढ़कर दूसरा नहीं है।"

— राजेन्द्र प्रसाद

2. बचपन

किसी महापुरुष के जीवन में उसके बचपन का बड़ा ही महत्व है। बचपन में ही उसके महापुरुषत्व का निर्माण होता है। बचपन ही जीवन की आधारशिला है। महापुरुषत्व की बहुत कुछ झलक उसके बचपन में ही दिखाई देने लगती है। तभी कहा गया है — "होनहार विरवान के होत चिकने पात।"

राजेन्द्र प्रसाद के बचपन की सादगी और भोलापन देखकर कोई पारखी ही कह सकता था कि एक गंवार गाँव में पैदा होने वाला यह साधारण-सा खामोश मिज़ाज बालक बड़ा होकर कलकत्ता यूनिवर्सिटी, जिसके अन्तर्गत बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आसाम, बर्मा तथा नेपाल के स्कूल कालिज होते थे, उसकी एंट्रेंस की परीक्षा में सर्वप्रथम आयेगा। वहां आगे चलकर बी.ए., एम.ए., बी.एल. और एम.एल. की परीक्षाओं में प्रथम स्थान बनाए रखेगा। तब भला कौन कह सकता था कि इस साधारण बालक में ऐसी प्रतिभा प्रसुप्त है कि बड़ा होकर यह "देशरत्न" के नाम से विख्यात होगा और भारत जैसे विशाल बहुजातीय, बहुभाषीय और बहुधर्मीय गणतंत्र का प्रथम राष्ट्रपति होगा।

तब भले ही कोई इसका अनुमान नहीं लगा सकता था, पर उनके बचपन का लेखा-जोखा जानकर, यह निष्कर्ष अवश्य निकाला जा सकता है कि हीरा यदि धूल में पड़ा हो तो भी हीरा है, उसके मूल्य में राई-रत्ती का अंतर नहीं आता। राजेन्द्र प्रसाद तो सही अर्थों में धूल भरे हीरे थे, जिसे तैंतीस वर्ष बाद एक चतुर जौहरी की अनुभवी आँखों ने परखा और दुनिया के सामने प्रस्तुत किया। यह जौहरी था अपने समय का सिद्ध पुरुष महात्मा गांधी। यह सन् 1917 की बात है।

राजेन्द्र प्रसाद का बचपन परिवार के सनातनी आस्थावान संस्कारों में बीता। आठ साल की उम्र तक तो वे अपनी मां के पास ही सोते रहे। चार बजे भोर में मां से रामायण की कहानी सुना करते थे। मां और दादी प्रभाती गातीं जिसे वे बड़े चाव से सुनते थे। बचपन में सुनी रामायण की कहानियां, प्रभाती और भक्ति रस में पगे हुए भजनों और परिवार में मनाए जाने वाले व्रतों-उत्सवों का अमिट प्रभाव बालक राजेन्द्र प्रसाद के कोरे मन पर पड़ा। तन्मयता के

साथ सुनने, सुनी हुई बात को समझने और उसे ग्रहण करने की जो आदत बचपन में पड़ी, वही पढ़ाई में, वकालत में और सार्वजनिक जीवन में जनसेवा के समय काम में आई।

राजेन्द्र प्रसाद बचपन से ही सीधे-सादे, बेहद भोले और मासूम थे। वे कभी किसी बात के लिए जिद नहीं करते थे, और न किसी को किसी बात के लिए तंग करते थे। खाने-पहनने को जो कुछ मिल जाता उसी में संतोष कर लेते थे। स्वभाव से बहुत संकोची थे। उनका यह संकोच सदा बना रहा। किसी से फालतू बात नहीं करते थे। मनोविज्ञान की भाषा में वे अन्तर्मुखी अधिक थे।

कदाचित उनके अंतमुर्खी स्वभाव की ही विशेषता थी कि उनकी स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी। फालतू बातों में खर्च न होकर उनकी अन्तःशक्ति संग्रहित होकर उनके बुद्धि पक्ष को पुष्ट करती रही। यह उस विद्यार्थी के लिए वरदान था। सीधे शब्दों में, राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी बौद्धिक शक्ति इधर-उधर की बातों में, फिजूल की गप-शप में, दोस्तबाजी में या हा-हा, ही-ही में खर्च नहीं होने दी। ऐसा विद्यार्थी यदि एंट्रेंस की परीक्षा में सर्वप्रथम आये तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं। उनकी अंतर्मुखी प्रवृत्ति ने उनकी सारी अन्तःशक्ति बुद्धि में केन्द्रित कर दी। इससे उनका अवधान बना रहा। उनका यह उदाहरण, सभी के लिए, विशेषकर छात्र वर्ग के लिए अनुकरणीय है। यदि हमारे छात्र उनके एक इसी गुण का अनुकरण-अनुसरण करें तो वे सहज ही परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त कर सकते हैं।

बालक राजेन्द्र प्रसाद की बचपन से ही रात में जल्दी सोने की, और भोर में जागने की आदत थी। वे रात पड़ते ही सो जाते थे, इतने बेखबर सो जाते कि उन्हें नींद में ही गोद में बिठाकर खाना खिलाया जाता था। दाई या नौकर उन्हें सोते से उठाते और गोद में बिठाकर दाल-भात अपने हाथ से मिलाकर खिलाते थे। वे उन्हें तोता-मैना की कहानी सुनाते हुए जगा-जगाकर खिलाते थे। सोते-सोते ही मुंह खोल देते और तब उनके मुंह में कौर डाल दिया जाता। खिलाने-पिलाने के बाद गोद में उठाकर उन्हें बिछावन पर सुला देते थे। घर पर तो यह काम चलता ही था, जब वह पढ़ने के लिए छपरा या पटना या कलकत्ता गये, तब भी एक आदमी इनके साथ रहा ताकि वह उन्हें घर का बनाया खाना खिलाए। साथ ही उनकी देखभाल भी करता रहे।

आज के इस युग में, जबकि हर बच्चा अपने हाथ से ही खाने-पीने की जिद करता है और इस तरह के संरक्षण को नकारता है, राजेन्द्र प्रसाद के इस बाल-सुलभ आचरण पर हंसी भी आती है, और आश्चर्य भी होता है। परन्तु न इसमें हंसी की कोई बात है, न आश्चर्य की। राजेन्द्र प्रसाद दाई या नौकर का संरक्षण स्वीकार कर अपनी सुरक्षा के प्रति आश्वस्त थे। वे सबसे जुड़ा हुआ मान कर अपने आप को सुरक्षित अनुभव करते थे। आज के युग में इसी सुरक्षा की भावना का अभाव है और सम्मिलित परिवारों के टूटने पर तो यह अभाव और भी बढ़ गया है। परिणामतः आज के नवयुवक के अन्दर समष्टिगत चेतना के स्थान पर व्यष्टिगत चेतना का आधिपत्य हो गया है। इस परिवर्तन ने उसे समाज से तो काट ही दिया है, परिवार से भी

काटकर मंझधार में पटक दिया है।

दूसरी ओर यह घटना इस बात का प्रमाण है कि किशोरावस्था तक भी राजेन्द्र प्रसाद बालक — निरे बालक बने रहे और उन्हें दीर्घकाल तक "बचपन" का सुख प्राप्त रहा। इससे उनके स्वभाव में सारल्य और निश्छलता ने उनके जीवन को पवित्रता और विश्वसनीयता प्रदान की जो किसी महापुरुष की देवोपम विभूति है।

राजेन्द्र प्रसाद स्वभाव के सरल थे। अपने प्रति और दूसरे के प्रति भी विश्वास पर चलने वाले थे इसलिए सब उन्हें चाहते थे। उन्हें अपने बड़े-बूढ़ों से भरपूर स्नेह प्राप्त हुआ। परिवार में सबसे छोटे थे, इसलिए माता-पिता के लाडले बेटे थे, बहनों के लाडले भाई थे, पर उन्होंने कभी इस लाड-प्यार और स्नेह का दुरुपयोग नहीं किया। इनका विनम्र और संकोची स्वभाव यदि सोना था तो इनकी निश्छल प्रकृति उस सोने पर सुहागा थी।

हां, बचपन में एक बात का प्रमाण उन्होंने अवश्य दे दिया था कि ये पढ़ाई-लिखाई में तेज़ निकलेंगे। वे ज़हीन थे। जो कुछ पढ़ते थे उसे तुरन्त याद करके सुना देते थे। इससे उनके घर के लोगों को अपार संतोष मिलता था। उनकी पढ़ाई-लिखाई की बात अगले अध्याय में बताई जायेगी।

3. प्रारम्भिक शिक्षा

उस समय की परम्परा के अनुसार राजेन्द्र प्रसाद ने बिस्मिल्लाह के साथ उर्दू-फारसी में अपनी पढ़ाई प्रारम्भ की। घर पर ही एक मौलवी साहब रखे गये। मौलवी साहब के रहने-सहने का प्रबन्ध घर पर ही कर दिया गया था। मौलवी साहब को नियमित मुशाहरा (वेतन) तो मिलता ही था, हर तीज-त्यौहार पर भी उन्हें थोड़ा-बहुत भेंट के रूप में मिल जाता था। इसके अलावा हर जुमेरात (वृहस्पतिवार) को भी उन्हें कुछ पैसे नियमित रूप से मिलते रहे। विद्या आरम्भ के समय राजेन्द्र प्रसाद पांच वर्ष के थे।

यह कोई सन् 1889-90 के आस-पास की बात है। तब न तो उस्ताद (अध्यापक) लालची होते थे, न तालिबेइल्म (विद्यार्थी) अभद्र और बेअदब। बेअदबी तब बदनसीबी का कारण मानी जाती थी। तब लोग उम्र का और उस्ताद का लिहाज करते थे। राजेन्द्र प्रसाद को जो मौलवी साहब पढ़ाते थे, वे कुछ शेखीखोर किस्म के आदमी थे। वे हर बात और हर हुनर के जानकार होने का दावा करते थे। पर, जब उस हुनर की परीक्षा ली जाती तो उन्हें बुरी तरह मुंह की खानी पड़ती थी। घर-गृहस्थी की देखभाल करने वाले मुंशी-कारिंदे अक्सर मौलवी साहब को जुंग पर चढ़ा देते थे और मौलवी साहब भी आत्म-प्रशंसा के नशे में दून तो हांकने वाले थे। परिणामस्वरूप वे हंसी के पात्र बनते थे। ये लोग केवल मजा लेने के लिए (अपमान के लिए नहीं) मौलवी साहब से आनन्द उठाया करते थे। राजेन्द्र प्रसाद कभी ऐसी बातों में शरीक नहीं होते थे। वे मौलवी साहब की इस प्रकृति पर मन-ही-मन हंसकर रह जाते थे। वे मौलवी साहब का बहुत अदब-लिहाज करते थे। गुरुजन व अध्यापक वर्ग के प्रति वे सदैव विनयी रहे। राजेन्द्र प्रसाद के व्यक्तित्व के बनने में परिवार के बाद इस मकतब की पढ़ाई का भारी योगदान रहा है। एक विद्यार्थी के पढ़ने का क्या तरीका होना चाहिए, पढ़ी हुई बात को कंठाग्र करने और लिखने का बराबर अभ्यास करते रहना कितना महत्वपूर्ण है, यह उन्होंने मकतब की पढ़ाई से सीखा।

मौलवी साहब तो घर के बाहरी कमरे में ही रहते थे। उस कमरे के बरामदे में उनका मकतब लगता था। मकतब में राजेन्द्र प्रसाद अपने दो साथियों के साथ सबेरे ही आ जाया

करते थे। तख्तपोश पर सामने डेस्क पर स्लेट-किताब रखते और झूमझूमकर पढ़ते। मौलवी साहब हर रोज पिछले दिन के पाठ को सुनते और लिखवा कर देखते। जब वह पक्का हो जाता तब आगे नया पाठ पढ़ाते। मौलवी साहब की यह विधि इतनी कारगर और निर्दोष थी कि इसमें जो कुछ पढ़ाया जाता उसे भूलने की गुंजाइश ही न थी।

राजेन्द्र प्रसाद मकतब में सबसे पहले आते। पिछले दिन का पाठ सबसे पहले पढ़कर सुना देते और लिखकर दिखा देते थे। उन्हें नया पाठ भी सबसे पहले मिल जाता जिसे वे तभी याद करना शुरु कर देते थे। यह पाठ सूर्योदय के कुछ देर बाद पूरा हो जाता। इस प्रकार सुबह की पढ़ाई का यह पहला दौर समाप्त होता था।

पढ़ाई का दूसरा दौर नाश्ता करने के तुरन्त बाद शुरु हो जाता था। यह लिखाई का समय होता था। विद्यार्थी लोग पूरी तख्ती लिखकर मौलवी साहब को दिखाते। उसके बाद तख्ती धोते और सूखने के लिए रख देते। तब मौलवी साहब उन्हें नया पाठ पढ़ाते। इसमें दो-ढाई घंटे लग जाते कि इतने में दोपहर हो जाती और छुट्टी कर दी जाती। यह आजकल की-सी आधी छुट्टी (हाफ टाइम) होती थी। इसमें राजेन्द्र प्रसाद घर आकर स्नान करते और उसके बाद भोजन। भोजन करने के बाद वे फिर मकतब आ जाते और घंटे भर वहीं तख्त पर सोते। उधर मौलवी साहब की भी यही दिनचर्या थी। इसके बाद पढ़ाई का तीसरा दौर चलता जिसमें पिछले पाठ को याद करना और उसे सुनाकर या लिखकर दिखा कर नया पाठ लेना होता था। इस प्रकार सहज-सहज पढ़ाई होती रहती। पढ़ाई के आठ घंटे का विभाजन इस प्रकार किया जाता कि विद्यार्थियों को बीच-बीच में आराम करने के साथ-साथ पाठ पढ़ने, याद करने और लिखने के लिए काफी समय मिल जाए। इससे उन पर पढ़ाई का अनावश्यक बोझ न पड़ा। पढ़ना उनके लिए ऐसी ही एक सहज, स्वाभाविक क्रिया रही जैसी कि खाना, पीना, खेलना या तमाशा देखना। पाठ पढ़ना, उसे याद करना, मौलवी साहब को सुनाना और लिखकर दिखाना — पढ़ने की यह क्रमिक विधि इतनी सफल थी कि राजेन्द्र प्रसाद को प्रारम्भिक भाषा (उर्दू-फारसी) का ज्ञान, पढ़ने और लिखने में कोई दिक्कत महसूस नहीं हुई।

पढ़ने-लिखने का अभ्यास करने के अलावा राजेन्द्र प्रसाद ने गिनती, पहाड़े, साधारण जोड़-घटा व गुणा-भाग भी यहीं मकतब में सीखे।

पढ़ना (रीडिंग), लिखना (राइटिंग) और गणित (अर्थमैटिक) — शिक्षा शास्त्र में तीन ''र'' (थ्री आर्स) की पढ़ाई के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये तीन ''र'' शिक्षा की नींव के पत्थर हैं। यदि विद्यार्थी बिना किसी मानसिक तनाव के शुद्ध-शुद्ध पढ़ना, शुद्ध व स्वच्छ लिखना और गिनती, पहाड़े तथा गणित की चारों आधारभूत बातों (जोड़-घटा व गुणा-भाग) को सीख ले तो उसकी भावी शिक्षा की नींव सुदृढ़ हो जाती है।

मकतब की पढ़ाई की एक विशेषता यह थी कि इसमें अभ्यास पर बहुत बल दिया जाता था। अभ्यास में जो निरंतरता रहती है वही पूर्णता की ओर ले जाने वाली मजबूत कड़ी है। कंठाग्र करने के अभ्यास से स्मरण-शक्ति बढ़ती है। निरंतर पढ़ने के अभ्यास से पठित वस्तु

अधिक से अधिक स्पष्टता के साथ मस्तिष्क में बैठ जाती है।

यहां की पढ़ाई का एक और लाभ राजेन्द्र प्रसाद को मिला, वह यह कि, उन्हें स्कूल में पाठ को याद करके ले जाने की आदत पड़ गई। इससे उनकी पठन सम्बंधी कठिनाइयां कभी एकत्रित नहीं हुईं। मौलवी साहब के कठोर अनुशासन का यह लाभ हुआ कि उन्हें हर काम को विधिपूर्वक और परिश्रम के साथ करने की आदत पड़ गई। वास्तव में तब मकतब में भारत के भावी देश-सेवक, विधिवेता और राष्ट्रपति का निर्माण हो रहा था। राजेन्द्र प्रसाद ने जीवन में जिन ऊंचाइयों को छुआ, उनके लिए अपेक्षित योग्यताओं का प्रादुर्भाव और विकास यहीं मकतब में हुआ।

प्रारम्भिक शिक्षा सम्बंधी यह विवरण हमारे छात्र वर्ग के लिए तो नितान्त उपयोगी है ही, उनके अभिभावकों और शिक्षकों तथा शिक्षाविदों के लिए भी कम उपयोगी नहीं। आज बच्चा पढ़ाई को भार समझता है, क्योंकि उस पर पढ़ाई लाद दी गई है। पढ़ाई उसके लिए सहज और अपेक्षणीय क्रिया नहीं रह गई है। फलस्वरूप बालक की कमजोरियां एकत्रित होती रहती हैं और वह पढ़ाई में पिछड़ता रहता है। बीच-बीच में आराम करके राजेन्द्र प्रसाद आठ घंटे पढ़ते तथा शाम को जी भरकर खेलते। कबड्डी, चुगी और गेंद उस जमाने के आम खेल थे। रात होने पर थोड़ी देर, बस यही कोई आध घंटे, मौलवी साहब के पास बैठकर पाठ को पढ़कर सुनाते, फिर सलाम करके घर आ जाते। जब वे अधिक देर तक नहीं पढ़ पाते थे उस समय इन पर कोई जोर-जबरदस्ती नहीं की जाती थी। हां, सोने से पहले थोड़ा-बहुत पढ़ना और इसी बहाने अपने उस्ताद को सलाम करना जरूरी था, जिसे ये खुशी-खुशी करते थे।

इस प्रकार सहज प्रकृत वातावरण में राजेन्द्र प्रसाद की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त हुई। इससे एक ओर उनमें नियमित रूप से और ठीक ढंग से पढ़ने की आदत पड़ी तो दूसरी ओर मौलवी साहब के अनुशासन का और मकतब के अदब-संस्कारों का भी प्रभाव उन पर पड़ा। दो साल बाद जब उन्हें छपरा स्कूल में भर्ती कराया गया, तब वहां की पढ़ाई में उन्हें कोई दिक्कत नहीं हुई। इसलिए उनके जीवन के निर्माण और विकास में मकतब की प्रारम्भिक शिक्षा का बहुत महत्व है।

"नियमपूर्वक थोड़ा भी काम प्रतिदिन किया जाए तो उसका फल साल के अन्त में काफी बड़ा देखने में आता है। यदि आधा घंटा भी रोजाना चर्खा चलाया जाए तो कम से कम बीस गज कपड़े के लिए सूत तैयार किया जा सकता है और इसी तरह दो-चार पंक्तियां भी रोज लिखीं जाएं अथवा एक श्लोक भी मुखस्थ किया जाए तो काफी प्रगति दिखेगी।" "रसरी आवत जात ते सिल पर परत निशान।"

— *राजेन्द्र प्रसाद*

4. विद्यार्थी जीवन

राजेन्द्र प्रसाद बचपन से ही संकोची स्वभाव के थे। इसलिए जब आठ वर्ष की अल्पायु में उन्हें पढ़ने के लिए छपरा जाना पड़ा, तब उन्हें खासी दिक्कत उठानी पड़ी होगी। परन्तु, उनमें परिस्थितियों से तुरन्त समझौता करने की और अपने आप को उनके अनुकूल ढाल लेने की अद्‌भुत क्षमता थी।

जीरादेई से छपरा जाना बालक राजेन्द्र प्रसाद के लिए सर्वथा नया अनुभव था। पहली बार पक्की सड़क देखी, पहली बार रेल की सवारी की। पहली ही बार अपरिचित अध्यापकों और छात्रों के सम्पर्क में आये। उनके लिए सब कुछ नया ही नया था। इस सम्बंध में समुचित जानकारी के लिए उनकी आत्मकथा से उद्‌धृत यह अंश यहाँ देना ठीक रहेगा:

''मुझे जहां तक स्मरण है, यही पहला अवसर था जब मैं रेल पर चढ़ा। मेरे छपरा पहुंचने के कुछ ही दिनों बाद जिला स्कूल में आठवें दर्जे में जो उन दिनों सबसे आरम्भिक दर्जा कहा जाता था, मेरा नाम लिखा दिया गया। मैंने वहीं ए,बी,सी, और नागरी अ,आ,इ,ई — एक साथ लिखना-पढ़ना आरम्भ किया। भाई (बड़े भाई महेन्द्र प्रसाद) उस समये दूसरे दर्जे से तरक्की पाकर अव्वल दर्जे अर्थात एंट्रेंस क्लास में पहुंचे थे। मेरे लिए कोई ''प्राईवेट'' मास्टर नहीं रखा गया। स्कूल की पढ़ाई के अलावा अगर कुछ पूछना होता तो भाई से पूछ लेता। घर (डेरे) पर मुझे पढ़ाने के लिए मास्टर न रखना बहुत अच्छा हुआ। स्कूल की पढाँई पर खूब ध्यान देने की आदत बन गई। आरम्भिक काल से ही अपने ऊपर कुछ भरोसा करना आ गया। साल के अन्त में भाई एंट्रेंस की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे और मैं अपना सालाना इम्तहान दे रहा था। इम्तहान में मेरा नम्बर बहुत अच्छा आया। मैं अपने दर्जे में अव्वल रहा। नम्बर भी इतने अच्छे आये कि हैडमास्टर ने मुझे डबल तरक्की देने की बात सोची। परीक्षा फल सुनाया गया। हम सब लड़के खुशियां मना रहे थे कि चपरासी ने आकर कहा कि हैडमास्टर मुझे बुलाते हैं। हैडमास्टर उन लड़कों को ही बुलाया करते थे जिनके खिलाफ कोई शिकायत होती। मैं बहुत डर गया और डरते-डरते वहां गया। पर, वहां जाकर डर दूर हो गया। उन्होंने (हैडमास्टर) पूछा — तुम डबल तरक्की लेकर सातवें के बदले छटे दर्जे में जाओगे? मैं उस

समय घबरा गया — कुछ खुशी, कुछ विस्मय और कुछ इस बात का भय कि एक वर्ष की पढ़ाई कैसे लांघी जा सकेगी। मैंने उत्तर दिया कि भाई से पूछ कर बताऊंगा। उन्होंने पूछा कि भाई कौन है। मेरे नाम बताने पर वे हंसे। भाई को जानते थे, क्योंकि भाई को भी उन्होंने ही पढ़ाकर एंट्रेंस की परीक्षा की अनुमति दी थी, जिसके लिए वे डेरे पर तैयारी कर रहे थे। उन्होंने फिर कहा कि, वह क्या मुझसे इस बात को अधिक समझ सकता है जो तू उससे पूछना चाहता है? खैर जाकर पूछ आ। मैं वहां से दौड़ा हुआ भाई के पास पहुंचा। वहां बाबू बांके बिहारी लाल (स्वर्गीय) और मौलवी शफी दाऊदी, तीनों एक साथ इम्तहान की तैयारी कर रहे थे। मैं वहीं गया और तीनों ने यह खबर बहुत खुश होकर सुनी। आपस में कुछ सलाह हुई। भाई का विचार हुआ कि एक क्लास लांघ जाने में मैं पीछे कमजोर पड़ जाऊंगा और आगे की पढ़ाई ठीक से न होगी। वे मेरे साथ हेडमास्टर के पास पहुंचे और उनसे अपनी राय कही। हेडमास्टर ने हंसकर फिर वही बात कही — क्या तू मुझसे इस बात को ज्यादा समझता है? फलतः सातवां लांघ कर उन्होंने मुझे छठे क्लास में भेज दिया।''

एक दर्जा लांघ कर ऊंचे दर्जे में जाना एक चुनौती थी। राजेन्द्र प्रसाद ने इसका धैर्य और परिश्रम से सामना किया। चुनौती की गंभीरता तब और भी बढ़ गई जब इन्हें पढ़ने के लिए छपरा से पटना आना पड़ा। बड़े भाई महेन्द्र प्रसाद एंट्रेंस पास कर उच्च शिक्षा के लिए पटना आ गये, तब उन्हें भी उनके साथ आना पड़ा। यहां उन्होंने टी.के. घोष एकेडमी में नाम लिखाया। पटना के छात्र पढ़ने में कुछ तेज थे, इसलिए उनसे मुकाबला कर कक्षा में अपना स्थान बनाने में उन्हें काफी परिश्रम करना पड़ा।

पटना में भी उनके लिए कोई प्राइवेट ट्यूटर नहीं रखा गया। इससे उन्हें लाभ ही हुआ। मौलवी साहब द्वारा मकतब में डाली गयी आदत उनके बड़े काम आई। प्रतिदिन जल्दी जागना, पिछले पाठ को दुहराना तथा नया पाठ पहले से पढ़कर स्कूल जाना, और कक्षा में समग्र ध्यान केन्द्रित कर ध्यानपूर्वक पढ़ना और डेरे पर आकर नाश्ता-पानी के बाद नये पाठ को दुहराना, यह उनकी दिनचर्या थी। स्मृति इतनी तीव्र थी कि जो एक-दो बार पढ़ लेते, वह उन्हें कंठाग्र हो जाता। यदि सभी विद्यार्थी राजेन्द्र प्रसाद की तरह ध्यानपूर्वक मन लगाकर पढें और पढ़े हुए को तुरन्त दुहरा लें तो अवश्य ही वे परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त कर सकते हैं। पर, इसके लिए विद्यार्थी को स्वयं पढ़ना और पढ़कर उसे समझना तथा जो समझ में न आये उसे दूसरों से पूछ लेना, इतना जरूर करना पड़ता है। आज अधिकांश विद्यार्थी स्वयं पढ़ने की या स्वयं शिक्षण की ओर प्रेरित नहीं किए जाते। फलतः पढ़ते समय उनकी अन्तःशक्ति उनकी कोई मदद नहीं करती। राजेन्द्र प्रसाद इस विषय में सौभाग्यशाली रहे। इससे एक ओर वे स्वावलम्बी बने, दूसरी ओर उनमें आत्मविश्वास जागता गया। साथ ही साथ उनकी बुद्धि प्रखर होती गई। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनमें किसी बात को अपने तरीके से सोचने-समझने की आदत पड़ गई।

पटना में राजेन्द्र प्रसाद केवल एक वर्ष पढ़ पाए। बड़े भाई महेन्द्र प्रसाद एफ.ए. पास

करके आगे पढ़ने के लिए कलकत्ता चले गये। राजेन्द्र प्रसाद को पटना छोड़कर हथुआ के हाई स्कूल में प्रवेश लेना पड़ा। परन्तु वहां पढ़ाई अच्छी न होने के कारण वे वापस छपरा के जिला स्कूल में आ गये। उस समय वे चौथी क्लास में पढ़ रहे थे। यहां एक बंगाली अध्यापक श्री रसिकलाल राय थे। राजेन्द्र प्रसाद की प्रतिभा को देखकर उनसे बहुत खुश थे। वे उन्हें यथाशक्ति सहायता देते रहते थे।

जब वे दूसरे दर्जे की परीक्षा दे रहे थे, तब एकाएक बीमार हो गये। केवल दो ही दिन परीक्षा देकर अपने गांव आ गये। बीमारी के कारण गांव में काफी दिन रहना पड़ा। इस गैरहाजिरी के कारण उनका नाम स्कूल से भी कट गया। जिन दो विषयों की परीक्षा दी थी, उनमें इतने अंक मिले कि केवल फीस जमा करा देने के बाद अगली कक्षा यानी एंट्रेंस में जाने की उन्हें इजाजत मिल गई। यह अपने में एक मिसाल थी।

एंट्रेंस से पूर्व स्कूली परीक्षा यानी "सेंटप" में भी राजेन्द्र प्रसाद सबसे अव्वल रहे। कलकत्ता यूनिवर्सिटी की एंट्रेंस परीक्षा में सबसे अव्वल रहे। कलकत्ता यूनिवर्सिटी उस समय बहुत बड़ी यूनिवर्सिटी थी। इस यूनिवर्सिटी के अन्तर्गत पूरा बंगाल, बिहार, उड़ीसा, असम और नेपाल के स्कूल और कालिज थे। इतनी बड़ी यूनिवर्सिटी में प्रथम आना अपने में एक गौरव की बात थी। बिहार के एक गांव का विद्यार्थी कलकत्ता यूनिवर्सिटी में प्रथम आये, यह और भी गौरव की बात थी, सच तो यह है कि पूत के पैर पालने में दिखाई देने लगे थे।

राजेन्द्र प्रसाद की पढ़ाई-लिखाई की चर्चा कुछ विस्तार से इसलिए की गई कि उनके विद्यार्थी जीवन का यह अध्याय विद्यार्थी वर्ग के लिए अनुकरणीय है। वे न तो किताबी कीड़े थे और न ही पढ़ने में आलसी। बस, पढ़ने के समय पूरे ध्यान मनोयोग से पढ़ना, नियमित रूप से पढ़ना, पढ़े हुए को दोहराना और नए पाठ को पढ़कर कक्षा में जाना — यही उनकी सफलता का रहस्य था। इस दिशा में हमारा आज का विद्यार्थी वर्ग बहुत कुछ सीख सकता है। हां, एक महत्वपूर्ण बात और है कि वे इधर-उधर की बातों में, बेकाम के गप-शप या दोस्तबाजी में अपना समय नहीं गंवाते थे। उस समय विद्यार्थियों के ध्यान को तरह-तरह के खेल, सिनेमा, रेडियो, टी.वी. आदि द्वारा बंटाने वाले साधन भी नहीं थे।

एंट्रेंस में प्रथम आते ही चारों ओर इन सभी प्रान्तों, और खासकर बिहार भर में राजेन्द्र प्रसाद की ख्याति फैल गई, पर, वे स्वभावतः जनक थे — विदेह जनक। अपनी ख्याति से बेखबर, अप्रभावित।

5. प्रेसिडेन्सी कालेज कलकत्ता में

कलकत्ता जाने से पूर्व छपरा में मलेरिया से उन्हें जाड़ा-बुखार आ गया। ज्वर उतरने के बाद सन् 1902 में कलकत्ता गये। एफ.ए. में दाखिला बन्द हो चुका था। एंट्रेंस में इतने अधिक नम्बर आये थे कि, एफ.ए. में दाखिला हो गया। राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी ''आत्मकथा'' में कलकत्ता और कालेज का वर्णन इस प्रकार किया है:—

''यह पहला ही मौका था कि मैं कलकत्ता गया। वहां के मकानों, सड़कों, ट्राम गाड़ी इत्यादि को देखकर चकित रहा और जब होस्टल पहुंचा तो वह छपरे के डेरे के मुकाबले में महल जैसा लगा। जब मैं क्लास में गया तो वहां भी दूसरा ही समां था। मैंने इतने सिर-खुले बंगाली लड़के एक साथ कभी देखे ही नहीं थे। उनमें कुछ कोट-पतलून-हैट पहनने वाले भी थे। वे ऐसे लोगों के लड़के थे जिनके पिता विलायत से लौटकर बैरिस्टर या डाक्टरी वगैरह कर रहे थे। मैंने किसी हिन्दोस्तानी लड़कों को उस दिन तक हैट-कोट पहनते देखा ही नहीं था। क्लास में जब नाम पुकारा गया तब मालूम हुआ कि वे हिन्दोस्तानी ही हैं। मैं उन दिनों अचकन, पाजामा और टोपी पहन कर कालेज क्लास में जाया करता था। नाम लिखाकर मैं जब पहले दिन कालिज में पहुंचा तो पहला घंटा केमिस्ट्री का था। वहां डाक्टर पी.सी. राय आये। उन्होंने हाजिरी लेनी शुरु की। मैं सबसे पीछे की एक बेंच पर बैठा था। क्लास के सब लड़कों के नम्बर पुकारे गये और सबने उत्तर दिए। मुझे अपना नम्बर मालूम ही नहीं था। अन्त में मैं इन्तजार करता रहा। जब आखिरी नम्बर वाले लड़के ने भी जवाब दे दिया और वह रजिस्टर बन्द करने लगे तब खड़े होकर मैंने कहा कि मैं अपना नम्बर नहीं जानता। उन्होंने मेरी ओर आंख उठाकर देखा और कहा, ठहरो, अभी मैंने मदरसे के लड़को की हाजिरी नहीं ली है और यह कह कर दूसरा रजिस्टर उठाया। मैं समझ गया कि पाजामा टोपी के कारण, उन्होंने मुझे मुसलमान मान लिया है। मैंने कहा कि, मैं मदरसा में नहीं पढ़ता हूं, प्रेसिडेन्सी कालेज में आज ही नाम लिखवाया है, इसलिए नम्बर नहीं जानता। उन्होंने नाम पूछा और जब मैंने नाम बताया तब सब लड़के मुड़कर मेरी ओर देखने लगे, क्योंकि वे तो जानते थे कि मेरे नाम का कोई लड़का उस साल यूनिवर्सिटी में फर्स्ट हुआ है। डा. राय ने कहा कि अभी नाम दर्ज नहीं है, जब

दर्ज हो जायेगा तब आज की भी हाजिरी वह पीछे लिख देंगे। फिर उन्होंने इतनी देर से नाम लिखाने का कारण पूछा और इस प्रकार मेरी उनसे पहली मुलाकात हुई। दूसरे साथियों ने भी पहले पहल मुझे देखा।''

''मैं एक हफ्ते से कम ही क्लास में हाजिरी दे सका कि फिर जाड़ा-बुखार शुरु हो गया। छपरे में ही जो मलेरिया का आक्रमण हो गया था वह फिर जोरों से आया। मैं महीनों तक बीमार रहा। दशहरे की छुट्टी में जीरादेई (जन्म स्थान) चला आया। महीने भर की छुट्टी थी। अच्छा हो जाने पर मैं बहुत परिश्रम से पढ़ने लगा। तीन-चार महीने की पढ़ाई में बहुत पिछड़ गया था। उसे पूरा करता था। साथ ही यह भी चिन्ता थी कि, यूनिवर्सिटी में अपनी जगह नहीं खोनी चाहिए। प्रत्येक विषय को मैं इस ख्याल से पढ़ने लगा कि, उसमें फर्स्ट होऊं। प्रत्येक विषय की एक पुस्तक जो क्लास में पढ़ाई जाती, इसके अलावा मैं प्रायः तीन-चार और पुस्तकें पढ़ गया। मैं अपने आप को हिसाब में कमजोर समझता था, इसलिए उस पर विशेष ध्यान दिया। अलजबरा, ट्रिग्रोमिट्री कौनिक सैक्शन की जितनी पुस्तकें मिल सकीं और उनमें जितने उदाहरण दिए गए थे, एक-एक करके सबको बना लिया। यूनिवर्सिटी में जितने प्रश्न उस समय तक पूछे गये थे, एक एक को उसी तरह से लगा लिया।''

राजेन्द्र प्रसाद को एंट्रेंस परीक्षा में सबसे अधिक नम्बर पाने के लिए बीस रुपये मासिक की अलग छात्रवृत्ति के अलावा अंग्रेजी में भी अव्वल होने से दस रुपये मासिक की अलग छात्रवृत्ति एक वर्ष के लिए मिली थी। एफ.ए. में भी यूनिवर्सिटी में सर्वोत्तम होने के लिए पच्चीस रुपये मासिक की दो वर्षों के लिए छात्रवृत्ति मिली। इसके अलावा अंग्रेजी में फर्स्ट आने के लिए पन्द्रह रुपये मासिक की छात्रवृत्ति, भाषाओं में फर्स्ट आने के लिए पन्द्रह रुपये मासिक की छात्रवृद्यि— जिसे डफ-स्कालरशिप कहते थे मिली। इस प्रकार उस समय अस्सी रुपये स्कालरशिप के अलावा सोने का पदक मिला।

कलकत्ता यूनिवर्सिटी से उन्होंने 1907 में एम.ए. सम्मान पास किया। वहीं से सन् 1910 में बी.एल. और सन् 1915 में एम.एल (मास्टर ऑफ लॉ) पास किया। एम.एल. की परीक्षा में इतने अधिक नम्बर आये कि वहां तक अन्य कोई पहुंच नहीं पाया। इस प्रकार शुरु से अन्त तक की परिक्षाओं में प्रतिष्ठा प्राप्त की।

6. जीवन के चौराहे पर

राजेन्द्र प्रसाद के गार्हस्थ्य जीवन में एक विशेष घटना उल्लेखनीय है। बारह साल की उम्र में, सन् 1896 ई. में इनका विवाह राजवंशी देवी के साथ हुआ। उस समय उम्र का ख्याल किए बगैर ब्याह होता था। यही विशेष घटना थी। इनके क्रमशः दो लड़के — मृत्युंजय प्रसाद और धनंजय प्रसाद — एक सन् 1906 में और दूसरा 1909 में हुए।

जैसा कि पहले बता चुके हैं कि राजेन्द्र प्रसाद संकोची स्वभाव के और अंतर्मुखी वृत्ति के व्यक्ति थे। इससे यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि वे सामाजिक जीवन से विरक्त थे। वे अंतर्मुखी अवश्य थे पर आत्मकेन्द्रित नहीं थे। "पर कारज के कारणे साधुन धरा शरीर" — वे इस उक्ति को चरितार्थ करते थे।

उस समय देश में एक राजनीतिक आंधी आई हुई थी। सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद शताब्दी के अन्त तक यद्यपि भारत पर अंग्रेजी शासन की पकड़ मजबूत हो गई थी, किन्तु इसी बीच देश का बुद्धिजीवी वर्ग सतर्क और जागरूक हो चुका था। ऐसे समय में, जिसमें स्वदेश और उसकी संस्कृति के प्रति थोड़ी सी चेतना थी, वही आगा-पीछा सोचे बिना स्वतंत्रता आन्दोलन में कूद पड़ा था। तब राजेन्द्र प्रसाद इस लहर से कैसे अछूते बचते?

राजेन्द्र प्रसाद अभी बी.ए. में पढ़ ही रहे थे कि बंग-भंग आन्दोलन छिड़ गया। अंग्रेज बंगाल को टुकड़े कर बंगवासियों की राजनीतिक चेतना का गला घोंट देना चाहते थे। पर ऐसा करने पर उन्हे भावनात्मक एकता से भरे आन्दोलन का सामना करना पड़ा। राजेन्द्र प्रसाद ने इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। यह उनके जीवन का एक मोड़ था और उन्हें समाज-सेवा और देश-सेवा के कष्टपूर्ण एवं कंटकाकीर्ण मार्ग पर ले गया। उनके इस कदम ने सिद्ध कर दिया कि राजेन्द्र प्रसाद की सहानुभूति समाज-सेवा की ओर है, विदेशी सरकार की ओर नहीं। उनके सामने दो मार्ग थे — एक अगम और दुर्गम देश सेवा का और दूसरा सुख-सुविधा से भरा राजभक्ति का। दूसरे मार्ग पर चलने से उन्हें सुख, वैभव, रायसाहब, रायबहादुर या "सर" का खिताब और ओहदा मिलता, पर उन्होंने पहले को अपनाया और दूसरे को ठुकराया।

राजेन्द्र प्रसाद ने ऐसी स्थिति का वर्णन अपनी आत्मकथा में इस प्रकार किया है: "1905 में बंग-भंग का आन्दोलन शुरु हुआ। मैं सभी सार्वजनिक सभाओं में पहले से ही जाया करता था। बंग-भंग विरोधी सभाओं में भी खूब जाता। उन दिनों इस बात में रोक टोक नहीं थी। उसी साल एक बड़ी सभा में विदेशी वस्तुओं का बायकाट और स्वेदेशी के प्रचार का निश्चय हुआ। मैं शरीक था। उसमें बहुत उत्साह था। लोगों ने व्रत लिया कि, स्वदेशी का ही वे व्यवहार करेंगे। मेरे लिए इसमें कोई कठिनाई नहीं थी, क्योंकि मैं बहुत पहले ही से केवल स्वदेशी वस्तुओं का ही व्यवहार किया करता था।"

सन् 1905 इस प्रकार एक बड़े आन्दोलन और जागृति का साल था। विशेष कर विद्यार्थियों में एक नये जीवन का संचार हो गया था। बंग-भंग आन्दोलन में बंगाली छात्रों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। राजेन्द्र प्रसाद उनके छात्र-संगठन से बड़े प्रभावित हुए। उससे प्रेरित होकर उन्होंने बिहारी छात्रों का भी संगठन बनाया। बिहार में जहां-जहां कालेज थे सभी कालेजों का अलग-अलग संगठन बनवाया। फिर उनकी छात्र-समितियां बिहार छात्र संगठन से सम्बद्ध हो गईं। इस संगठन की एक विशेषता थी कि इसे राजनीतिक आन्दोलन से अलग रखा। इसकी विचारधारा रचनात्मक और सकारात्मक रही। अन्त में गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में बिहार के प्राय: वे सभी छात्र आगे चलकर स्वतंत्रता आन्दोलन के अगुआ बने। बिहार छात्र संगठन ने छात्रों में जागृति पैदा की, उन्हें अपना भला-बुरा सोचने का अवसर दिया। परिणामत: बिहारी छात्र अपने आप को समाज और देश से जुड़ा समझने लगे। उनमें अपने कर्तव्य और अधिकारों के प्रति चेतना जागृत हुई जो अपने आप में एक उपलब्धि थी। यह कहना गलत न होगा कि सन् 1917 में बिहार में चम्पारण आन्दोलन के समय गांधीजी को तपे-मंजे हुए उत्तरदायी कार्यकर्त्ता मिल गये। वे सब इसी संगठन की देन थे। यह संगठन 1906 में बनाया गया और 1920 तक बिहारी छात्रों की सेवा करता रहा।

सन् 1906 में राजेन्द्र प्रसाद ने अखिल भारतीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में एक स्वयंसेवक की हैसियत से भाग लिया। इस अवसर का उन्होंने ज्ञानवर्धक लाभ उठाया। संयोग से उनकी ड्यूटी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में लगी। वहां उनके विषय निर्धारणी समिति की बहस सुनने का सुअवसर मिला। तब कौन समझता था कि यह स्वयंसेवक एक दिन कांग्रेस का सभापति और देश का पहला राष्ट्रपति बनेगा। वस्तुत: राजेन्द्र प्रसाद की शेष जीवन-गाथा कांग्रेस के एक अदना "स्वयंसेवक से राष्ट्रपति तक" की क्रमोन्नति की एक कहानी है। सीढ़ी के सबसे ऊंचे सिरे तक पहुंचने के लिए सबसे नीचे के सिरे पर लगे डंडे पर पैर रखना ही पड़ता है।

राजेन्द्र प्रसाद सन् 1907 में कांग्रसे के साधारण सदस्य बने। चार ही वर्षों बाद यानी 1911 में वे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य बन गये। इन चार वर्षों में उनका कांग्रेस के चोटी के नेताओं, जैसे लोकमान्य तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, लाला लाजपतराय, मदनमोहन मालवीय, चितरंजन दास, सरोजनी नायडु आदि से परिचय हो चुका था। इसके

बाद कांग्रेस से उनका लगाव दिनों-दिन बढ़ता ही गया। उसी के माध्यम से वे पूर्ण सपर्पण भाव से देश-सेवा के मार्ग पर अग्रसर होते गये।

जब राजेन्द्र प्रसाद कलकत्ता में पढ़ते थे तब पढ़ाई के अलावा उनका एक ही शौक था — अपने बचे समय का सदुपयोग करना। कलकत्ता में वे ''डाउन सोसायटी'' के क्रियाशील सदस्य बन गये। इस संस्था की बैठकों में गणमान्य व्यक्तियों के भाषण हुआ करते थे। कभी-कभी राजेन्द्र प्रसाद को भी भाषण करने का अवसर मिलता। तब वे अपने विषयगत विचारों को बड़ी संयत, स्पष्ट एवं प्रांजल भाषा में प्रस्तुत करते। श्रोताओं को लगता कि वक्ता सुलझे दिमाग का व्यक्ति है। उसके विचारों में आदर्श और व्यावहारिकता दोनों पक्ष विद्यमान हैं। ये एक देशभक्त वकील के विचार होते जिनमें उनके राजनेता और विधिवेत्ता दोनों ही गुण विद्यमान रहते। उनके ऐसे भाषणों को ही सुनकर तत्कालीन पत्रिका ''माडर्न रिव्यू'' ने समीक्षात्मक टिप्पणी लिखी जिसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है:

''इसके वक्ता (राजेन्द्र प्रसाद) के लिए भविष्य के गर्भ में सब कुछ रखा है। इसमें हमें जरा भी आश्चर्य नहीं है। ईश्वर इसको स्वस्थ रखे। भारतीयों को प्राप्त हो सकने वाला कोई पद उसकी महत्वाकांक्षा से परे नहीं होगा। हमें आशा है कि वह हाईकोर्ट में न्यायाधीश का पद प्राप्त करेगा और इस सम्बंध में नियुक्ति पत्र राष्ट्रीय कांग्रेस के किसी अधिवेशन में प्राप्त करेगा जैसा कि लाहौर में राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षता करते हुए न्यायाधीश श्री चन्द्रावरकर को प्राप्त हुआ था।''

स्मरण रहे कि तब राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष का और हाईकोर्ट के न्यायाधीश का पद बहुत महत्व रखता था। तब भारत गणतंत्र के राष्ट्रपति पद की संकल्पना लोगों के सम्मुख न थी।

''डाउन सोसायटी'' के कार्यक्रमों में राजेन्द्र प्रसाद को सोत्साह एवं निष्ठा के साथ भाग लेते देखकर स्वामी विवेकानन्द की शिष्या भगिनी निवेदिता कहा करती थी कि, ''यह भारत का भावी नेता है।'' कितने सत्य थे उनके शब्द, यद्यपि महज 24-25 की अल्पायु के नवयुवक को देखकर उसके बारे में ऐसा अनुमान लगाना प्रायः कठिन ही होता है। पर, लगता है कि तब राजेन्द्र प्रसाद की प्रतिभा या उनके व्यक्तित्व का प्रभा-मंडल विकसित हो चुका था, जो सहज ही सबकी दृष्टि को आकृष्ट कर लेता था। तब 'माडर्न रिव्यू' ने या भगिनी निवेदिता ने उनके विषय में जो भविष्यवाणी कर दी वह न तो कोरी प्रशंसा थी और न ही अतिशयोक्ति।

राजेन्द्र प्रसाद ने चाहे बंग-भंग आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई हो, चाहे कांग्रेस में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ किया हो, चाहे बिहार में छात्र संगठन की नींव डाली हो या डाउन सोसायटी में भाग लेकर अपनी प्रतिभा और ध्येय-निष्ठा का परिचय दिया हो, एक बात स्पष्ट है कि यह वह समय था जबकि वे अपनी पहचान बना रहे थे। विद्यार्थी जीवन के बाद, जैसा कि अक्सर होता है, वे जीवन क्षेत्र में मात्र जीविका के लिए नहीं उतरे, जनसेवा और देश सेवा ही उनका प्रमुख लक्ष्य था। यह भी स्पष्ट है कि अपने क्रियाशील जीवन के उषाकाल में ही राजेन्द्र प्रसाद ने समझ लिया था कि जीवन केवल रोजी-रोटी कपड़े तक ही सीमित नहीं है।

यह समझ हर आदमी में नहीं होती और जिनमें होती है वे ही महापुरुषत्व की ओर अग्रसर होते हैं।

वस्तुतः इस समय उनके भावी जीवन की भूमिका बन रही थी। राजेन्द्र प्रसाद ने सेवा का व्रत लेने का निर्णय ले लिया था। एक घटना उनके निर्णय को और भी स्पष्ट करती है।

तब वे कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत कर रहे थे। वकालत अच्छी-खासी चल रही थी। तभी माननीय गोपालकृष्ण गोखले कलकत्ता पधारे। राजेन्द्र प्रसाद को मिलने के लिए आमंत्रित किया। गोखेल कांग्रेस के महान नेता थे। उन्होंने "सर्वेंट आफ इंडिया सोसायटी" की नींव डाली जिसके सदस्य आजीवन सेवा का व्रत लेते थे। सोसायटी उनके परिवार के भरण-पोषण के लिए थोड़ी सी राशि — सौ रुपये प्रतिमाह — देती थी। गोखले ने राजेन्द्र प्रसाद से सोसायटी का सदस्य बनने को कहा। यह वही गोपाल कृष्ण गोखले थे, जिन्होंने गांधीजी को भारत के सार्वजनिक जीवन में उतरने के लिए महामंत्र और मार्गदर्शन कराया। संयोग की बात है कि राजेन्द्र प्रसाद को देशसेवा की प्रेरणा भी उन्हीं से मिली।

माननीय गोखले से अपनी पहली मुलाकात, का उल्लेख राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में इस प्रकार किया है: "माननीय गोखले से, जहां वह ठहरे थे, जाकर मिले। उन्होंने थोड़े दिन पहले "सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी" की स्थापना की थी। वह चाहते थे कि मैंने यूनिवर्सिटी परीक्षा अच्छी तरह पास की है और अब वकालत की तैयारी कर रहे हैं। उन्होंने कहा — हो सकता है कि तुम्हारी वकालत खूब चले, बहुत रुपये तुम पैदा कर सको। बहुत आराम और ऐशो-इ-शतरत में दिन बिताओ। बड़ी कोठी, घोड़ा गाड़ी, नौकर इत्यादि दिखावट के सामान, जो अमीरों को हुआ करते हैं, तुमको सब प्राप्त हों। पर मुल्क काभी दावा कुछ लड़को पर होता है, और चूंकि तुम पढ़ने में अच्छे हो, इसलिए तुम पर यह दावा और अधिक है।" अपने बारे में उन्होंने कहा — "मेरे सामने भी यही प्रश्न आया था। मैं गरीब घर का आदमी था। मेरे घर के लोग बहुत आशा रखते थे कि जब मैं पढ़कर तैयार हो जाऊंगा तो रुपये कमाऊंगा और सबको सुखी बना सकूंगा। जब मैंने उनकी सब आशाओं पर पानी फेर कर देश सेवा का व्रत लिया तो मेरे भाई इतने दुखी हुए कि कुछ दिनों तक वह मुझसे बोले तक नहीं, पर कुछ दिनों के बाद वह सब बातें समझ गये और फिर मेरे साथ खूब प्रेम करने लगे। हो सकता है कि, यह सब तुम्हारे साथ भी हो, पर इसका विश्वास रखो, सब लोग अन्त में तुम्हारी पूजा करने लगेंगे। लोगों की सब उम्मीदें, तुम पर बंधी है, पर कौन जानता है, अगर तुम्हारी मृत्यु हो गई तो उसे वे लोग बर्दाश्त कर ही लेंगे।" इसी प्रकार उन्होंने प्रायः डेढ़-दो घंटे तक बातें की। बातें करने का तरीका भी ऐसा था कि दिल पर उसका बहुत गहरा असर हुआ। अन्त में उन्होंने कहा — "ठीक इसी समय उत्तर देना जरूरी नहीं है, क्योंकि सवाल गहन है, विचार करके एक दिन फिर मिलो और तब अपनी राय दो।" हम वहां से, एक प्रकार से खोये हुए से होकर, निकले। अपने "मेस" में वापस आये। उनकी बातों का इतना असर पड़ा था कि, कोई दूसरी बात सूझती ही न थी।

उनकी बातों पर विचार करने लगे। मुझे तो कई दिनों तक नींद नहीं आई। खाना-पीना सब कुछ बरायनाम रह गया। स्वदेशी के दिनों में देश की बातें सामने आती थी। देशसेवा की भावना भी जब तब जागृत होती थी। पर इसके पहले कभी इस तरह से यह प्रश्न सामने नहीं आया था और न कभी ऐसे बड़े आदमी से मिलकर इस प्रकार के मार्मिक शब्दों के सुनने का ही सौभाग्य हुआ था। एक ओर उनकी बताई देश के लिए हम जैसे लोगों की सेवा की जरूरत, दूसरी ओर भाई पर घर का सारा बोझ लादना। मेरे भी दो पुत्र हो चुके थे। और उनके भी तीन पुत्रियां थी और एक लड़का। मां अब तक जीवित थीं। वह क्या कहेंगी, घर के दूसरे लोगों को कैसा दुख होगा इत्यादि भावनाएं, इतनी सताती रहीं कि जैसा ऊपर कहा है — खाना-पीना तक प्रायः छूट गया। मेरे साथ गोखले से मिलने जो गया था — हम दोनों के सिवा इन बातों को दूसरा कोई जानता नहीं था। भाई साथ (कलकत्ता) में ही थे, पर उनसे भी नहीं कहा। किसी दूसरे साथी से भी नहीं कहा। हाईकोर्ट जाना भी बन्द रहा। टहलना-घूमना छूट गया। कहीं न कहीं एकान्त ढूंढ कर बैठना और चिन्ता करना, यही एक काम रह गया। प्रायः दस-बारह दिनों तक यही सिलसिला चला। भाई को कुछ शक हुआ कि तबीयत ठीक नहीं है। उनको कुछ कहकर टाल दिया। अभी अपना जी नहीं भरता था जो उनसे क्या कहूं।

"कई दिनों की इस प्रकार की चिन्ता के बाद मैंने एक दिन निश्चय किया कि मुझे माननीय गोखले की बात मान कर उनकी सोसायटी में शरीक हो जाना चाहिए। मेरी हिम्मत नहीं होती थी कि भाई से मैं खुलकर कहूं क्योंकि मुझे डर था कि उनको इससे बहुत दुख होगा। मैंने एक लम्बा पत्र लिखा — वह इस प्रकार है:

कलकत्ता
1-3-1910
मंगलवार

पूज्य भाई,

आप एक ऐसे व्यक्ति के पत्र को पाकर आश्चर्यचकित होंगे जो यहां आपके साथ रात-दिन बिता रहा है, कुछ बातें हैं जो मुझे आपको लिखने को बाध्य करती हैं। मैंने अनेक बार अपने मन की बातें आपसे कहने का विचार किया, पर एक भावावेशपूर्ण व्यक्ति होने के कारण मैं आमने-सामने आपसे बातें नहीं कर सका। मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि मैं इस पत्र में जो कुछ कहने जा रहा हूं वह बिना पूरा-पूरा विचारा हुआ नहीं है।

आपको याद होगा कि करीब 20 दिन पहले मैं माननीय गोखलेजी से मिलने गया था। मेरे सामने उन्होंने 'सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी' में सम्मिलित होने के लिए प्रस्ताव रखा। तबसे इस प्रस्ताव की व्यहारिकता के सम्बंध में मेरा दिमाग चक्कर खा रहा है। इस पर लगातार 20 दिन तक सोचते रहने के बाद मैं समझता हूं कि मेरे लिए अच्छा होगा कि मैं अपने भाग्य को देश के साथ मिला दूं। मैं जानता हूं कि मुझसे — जिस पर परिवार की सारी आशाएं

केन्द्रीभूत हैं — ऐसी बातें सुनकर आपके हृदय को एक भारी धक्का लगेगा। मैं यह भी जानता हूं कि अगर मैं परिवार को अपने आप संभलने को छोड़ दूं तो परिवार भारी दिक्कतों में पड़ जायेगा लेकिन मेरे भैया, मैं एक उच्चतर और महत्तर पुकार भी अपने हृदय के अन्दर महसूस करता हूं। आपको कठिनाई और विपत्ति में छोड़ देना मेरे लिए कृतघ्नता हो सकती है, पर मुझे आशा है वह झगड़े का कारण नहीं होगा। मुझे विश्वास है कि हम लोगों का एक-दूसरे के लिए स्नेह और प्यार जरा-जरा-सी असुविधाओं को जताने के लिए पर्याप्त प्रबल और पर्याप्त महान है। मुझे विश्वास है कि मैं जो आपको प्यार करता हूं वह इसलिए नहीं कि आप पारिवारिक कार्यों का प्रबन्ध और हम लोगों की सहायता कर रहे हैं। मैं यह भी निश्चित मानता हूं कि आप भी मुझे जो प्यार करते हैं वह इसलिए नहीं कि आप परिवार के लाभ के लिए कुछ कमाने की मुझसे आशा रखते हैं। हम लोगों का प्रेम एक अधिक ठोस नींव पर स्थित है और एक-दूसरे के मनमानेपन के कारण कितनी ही असुविधाएं और तकलीफें हम लोगों को क्यों न उठानी पड़ें, हमारे परस्पर प्रेम में कुछ कमी नहीं आयेगी, बल्कि मेरा झुकाव तो इस बात पर विश्वास करने की ओर है कि वह सुदृढ़ तथा टिकाऊ होगा इसलिए मैं आपके सामने प्रस्ताव रखता हूं कि, 30 कोटि के हितार्थ आप मुझे उत्सर्ग करें। श्रीमान गोखलेजी की सोसायटी में सम्मिलित होना मेरे लिए कोई व्यक्तिगत त्याग की बात नहीं है। भले के लिए हो या बुरे के लिए, मुझे इस तरह की शिक्षा पाने का लाभ प्राप्त हुआ है कि मैं जैसी भी परिस्थिति में पड़ जाऊं, मैं अपने को उसी के अनुकूल बना सकता हूं। मेरा रहन-सहन भी ऐसा सीधा-सादा रहा है कि मुझे आराम के लिए किसी खास तरह के सरो-सामान की जरूरत नहीं पड़ सकती। सोसायटी से जो कुछ मुझे मिलेगा वही मेरे लिए काफी होगा। पर मैं यह कहकर अपने को झूठ-मूठ भुला नहीं सकता कि यह आपके लिए कोई त्याग नहीं होगा। आप सभी, जो मुझ पर बड़ी आशाएं बांधते आ रहे हैं, देखेंगे कि एक क्षण में सारी आशाएं ढह कर मिट्टी में मिल गई हैं। आप सभी अपने को एक अथाह समुद्र में पड़े हुए पायेंगे, और यह नहीं समझ सकेंगे कि अब क्या करना चाहिए। लेकिन, मेरे भैया, याद रखें, हम लोगों के घर पर थोड़ी-सी जायदाद है। यदि मैं कमाऊं तो, मैं जानता हूं कि, मैं कुछ रुपया हासिल कर सकूंगा और शायद इसके द्वारा मैं उस तथाकथित समाज में अपने परिवार का दर्जा ऊंचा करने में भी समर्थ होऊंगा जहां लोग अपनी लम्बी थैली (प्रचुर धन-सम्पत्ति) के कारण ही बड़े गिने जाते हैं, अपने विशाल हृदय के कारण नहीं। पर इस क्षण भंगुर संसार में सम्पत्ति, पद, मर्यादा सभी नष्ट हो जाते हैं। लोग जितने ही धनी होते जाते हैं उतनी ही उनकी आवश्यकता भी बढ़ती जाती है। लोग समझ सकते हैं कि धन पाकर हम संतुष्ट होंगे पर जिन्हें कुछ भी ज्ञान है वे अच्छी तरह जानते हैं कि सुख बाह्य कारणों से नहीं मिलता, बल्कि वह हृदय की उपज है। एक गरीब अपने थोड़े रुपए से अधिक संतुष्ट रहता है बनिस्बत एक अमीर आदमी के, जिसके पास लाखों रुपये रहते हैं। ऐसी अवस्था में दरिद्रता को तुच्छ नहीं समझना चाहिए। दुनिया के महापुरुष पहले महादरिद्र ही रहे हैं, वे आरम्भ में खूब सताये गये हैं और नीची नजर से देखे गये हैं। पर हंसी उड़ाने वाले और सताने

वाले धूल में मिल गये, वे अब कभी उठ नहीं सकते, और न उनका नाम अब सुना जा सकता है, पर उनके निपातन और उपहास के पात्र लाखों मनुष्यों की स्मृति में — लाखों के हृदय में — आज भी वास कर रहे हैं। अतएव उन तथाकथित सामाजिक व्यक्तियों के उपहास और घृणा की परवाह न करें, जिनकी आत्मा और हृदय में वह विशालता नहीं है जो गरीब आदमियों को उन्हें घृणा से नहीं बल्कि दया के भावों से देखने की शक्ति देती है।

मेरे भैया, आप विश्वास रखें यदि मेरे जीवन में कोई महत्वाकांक्षा है तो वह यही है कि मैं देश सेवा में काम आ सकूं। हो सकता है कि यह मेरी शिक्षा का दोष है, पर आपको याद होगा — आपने ही पहले-पहल इन सुन्दर भावों को, इन उच्च विचारों को मेरे मन में आरोपित किया था। जब मेरे इंग्लैंड जाने की बात हो रही थी, मैं नहीं जानता कि उस वक्त आप क्या सोचते थे या क्या महसूस करते थे, पर मेरी तो आई.सी.एस. की ओर कभी आसक्ति नहीं थी, क्योंकि मैं अनुभव करता था कि उससे मेरी कार्यशीलता बहुत संकुचित हो जायेगी। वह एक अवसर था जब मैंने अपना हृदय आपके सामने खोल कर रखा था और उसके उत्तर में आपका हृदय भी खुल गया था। वैसा ही यह दूसरा अवसर है, साहस करें और जो मार्ग मैं पकड़ना चाहता हूं उस पर चलने में आप अपनी सहमति दें। पर यदि मुझे मालूम हो कि आप सहमति देना नहीं चाहते तो मैं केवल दुखी होऊंगा, लेकिन इस पर मुझे कोई आश्चर्य नहीं होगा। मुझे विश्वास है कि आप सभी मुझे परिवार के लिए आगे की रोटी कमाने वाला समझते हैं। हां, अगर आप मुझे केवल उसके लिए ही प्यार करते हैं — और यह सोचकर ही मेरा कलेजा टूक-टूक हो जाता है कि हमारे सम्बंध में ऐसी नीचता और तुच्छता है — तो मैं नहीं जानता कि क्या कहा जाए। कृपया मुझे हताश न करें और मुझे अपने प्रति झूठा साबित न होने दें। जो अपने प्रति सच्चा नहीं है वह किसी दूसरे के प्रति कभी सच्चा नहीं हो सकता। यदि आप मुझे रोक रखेंगे तो मेरा शेष जीवन बड़ा दुखमय हो जायेगा, आपने मेरे लिए जो पेशा चुन रखा है उसमे सफलता प्राप्त करना भी सन्देहजनक हो जायेगा। मुझे दुखी बनाना आपका अभिप्राय कभी नहीं हो सकता। मैं अभी महत्वाकांक्षा की बात कर रहा था। मेरी कोई महत्वाकांक्षा नहीं है, सिवाय इसके कि मैं माताजी की कुछ सेवा के काम आ सकूं। पर मान लिया जाए कि अगर मेरी कोई महत्वाकांक्षा भी होती है तो हाईकोर्ट में मेरी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए कौन सा क्षेत्र है। मैं जानता हूं कि मैं प्रति मास कई सौ रुपये कमाऊंगा — कई हजार रुपये महीने भी हो सकते हैं — पर क्या दुनिया में ऐसे अनगिनत व्यक्ति नहीं हैं जिनके पास हजारों, लाखों और करोड़ों की पूंजी है पर जिनकी कोई परवाह नहीं करता, और जिन्हें हममें से कुछ लोग दया के अतिरिक्त और किसी भाव से नहीं देख सकते। पर दूसरी ओर सुविशाल क्षेत्र पर दृष्टि डालें, कौन सा राजकुमार, कौन सा जनसाधारण है जिसे एक गोखले के समान प्रभाव, पद या मर्यादा प्राप्त हो? और क्या वे आखिर एक गरीब आदमी नहीं हैं? क्या हम लोग उनके परिवार से भी ज्यादा गरीब हैं? अगर लाखों व्यक्ति दो या तीन रुपये महीने में काम चला लेते हैं तो हम लोग भला सौ रुपये से क्यों नहीं चला सकते? हम लोगों की महत्वाकांक्षा के लिए सुविशाल

क्षेत्र होगा। उस पर भी ख्याल करें — और मुझे शान्तिपूर्वक जाने दें। यह आपका ही त्याग होगा, आपका ही गौरव भी।

अब खर्च के प्रश्न पर विचार करें, मुझे अपने भरण-पोषण के वास्ते आपको कुछ देने के लिए कहने की जरूरत नहीं पड़ेगी — मुझे वह सोसायटी से मिल जायेगा। परिवार पोषण के लिए भी मुझे कुछ मिलेगा जिसे मैं आपके पास भेज दिया करूंगा। इससे आपको मुश्किल से ही कुछ सहायता मिल सकेगी, परन्तु तो भी कुछ काम की हो सकती है, और अब आपको तीस से संतोष करना होगा जब आप तीन हजार की उम्मीद करते थे। सोसायटी बाल-बच्चों की शिक्षा के लिए भी कुछ देती है। अतएव मैं आपको उन सबों की शिक्षा के लिए प्रबन्ध करने की तकलीफ नहीं दूंगा। मैं उनकी खुद खबर लूंगा और उन्हें शिक्षा दूंगा।

मेरे भाई, इस पर विचार करें और अपनी राय बनावें। मैंने लगातार बीस दिनों तक इस पर विचार किया है और अब इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि सभी तथाकथित सामाजिक मान-मर्यादा और पद निःसार दिखावा है — किसी व्यक्ति का बड़प्पन उसके धन की महत्ता पर निर्भर नहीं करता, बल्कि उसके हृदय की विशालता पर निर्भर करता है और मुझे विश्वास है कि आपका हृदय इतना महान है कि जितना दुनिया भर में हो सकता है। फिर, दूसरी विचार-दृष्टि से इस प्रश्न पर आइये। मान लीजिये मैं प्लेग से मर गया, तो क्या आपको परिवार और उसके कारबार को जो कुछ आपके पास है उसी से, न चलाना पड़ेगा? क्या उस अवस्था में आप अपने भाग्य पर संतोष करने को बाध्य नहीं होंगे? अगर मनुष्य में कुछ देवत्व है, जैसा कि मैं विश्वास करता हूं कि है, तो क्या उसे स्वेच्छा से उस बात पर राजी नहीं हो जाना चाहिए जिस पर राजी होने के लिए वह बाध्य हो सकता है? यदि देव आपको मुझसे रहित होने को लाचार कर दे तो इसे स्वीकार करने के सिवाय आपके लिए दूसरा चारा नहीं है। अतएव दरिद्रता को स्वेच्छा से अपना कर और थोड़े समय के लिए सामाजिक हीनता को भी स्वीकार कर देवोपम महानता दिखलावे। दिखला दे कि मनुष्य स्वतंत्र विचार और महान हृदय रखता है — और दुनिया के समक्ष साबित कर दें कि आज भी दुनिया उच्च विचार वालों से बिलकुल रहित नहीं है। साबित कर दें कि ऐसे मनुष्य भी हैं जिनके लिए रुपये-पैसे तुच्छ वस्तु हैं — जिनके लिए सेवा ही सब कुछ है। लाखों की, और अन्ततोगत्वा, पर कुछ कम नहीं — अपने निकटतम और प्रियतम की भी, कृतज्ञता का भाजन बनें।

मैं अपनी पत्नी को भी इसके सम्बंध में लिख रहा हूं। मैं माताजी को नहीं लिख सकता। वृद्धावस्था में उन्हें इससे भारी कष्ट पहुंच सकता है।

आपका प्यारा,
राजेन्द्र

महेन्द्र बाबू को चिट्ठी देने के बाद दोनों भाई उसी दिन शाम को कालेज स्कवायर में मिले, बड़ी रात तक घंटों बातें होती रहीं। राजेन्द्र बाबू सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी में शामिल होने के लिए आग्रह कर रहे थे। आप बहुत देर तक खूब रोते रहे, पर महेन्द्र बाबू आपके जाने की

बात से अत्यन्त दुखित थे। घर की बुरी हालत और माता की मरणासन्न अवस्था में राजेन्द्र बाबू को अपने से विलग होते देखना महेन्द्र बाबू को असह्य हो रहा था। इससे वे अलग ही रो रहे थे। आखिर सबको महान दु:ख में डालकर अलग हो जाना राजेन्द्र बाबू जैसे करुण हृदय और विनयशील व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हुआ। शायद ईश्वर को भी मंजूर नहीं था कि आप सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी के छोटे दायरे में, जो समय के साथ और भी संकुचित होता गया है, आबद्ध हो जावें। निश्चय ही ईश्वर ने देश को गुलामी से छुड़ाने के महत्व कार्य के लिए आपको बचा रखा था। अस्तु, राजेन्द्र बाबू रुक गये। अपने काम से भाई की भीषण वेदना पाते देखकर आपने क्षमा मांगते हुए फिर एक पत्र लिखा।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह पत्र राजेन्द्र प्रसाद की आत्मा का प्रतिबिंब है और सच तो यह है कि इन्हीं विचारों के कारण वे गांधीजी के नजदीक आये। इन्हीं विचारों ने उन्हें देशरत्न बनाया और राष्ट्रपति के उच्च पद पर पहुंचा दिया।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि अब राजेन्द्र प्रसाद बड़े लोगों की निगाहों में आ गये थे। कुछ दूरदर्शी लोगों ने तो "राजेन्द्र प्रसाद" नाम तभी नोट कर लिया था जब वे एंट्रेंस की परीक्षा में यूनिवर्सिटी में प्रथम आये। बिहार के किसी छात्र के प्रथम आने ने सबको चौंका दिया, गोया यह अनहोनी बात हो। बात दरअसल अनहोनी ही थी। माननीय गोखले भी उनका नाम सुन चुके थे। जब वे एम.एल. करने कलकत्ता गये तो वहां की हाईकोर्ट के नामी-गिरामी बैरिस्टर शमसुलहुदा साहब ने उनकी ख्याति के आधार पर उन्हें अपना सहायक बनाया। वे बैरिस्टर साहब को मुकदमे के कागज तैयार करने में भी मदद देते थे और कालेज में पढ़ते भी थे। स्मरण रहे कि वे एम.एल. की परीक्षा में भी सर्वप्रथम आये।

कलकत्ता हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश थे सर आशुतोष मुखर्जी। वकालत के दौरान राजेन्द्र प्रसाद को जब तब उनकी कोर्ट में बहस के लिए जाना पड़ता था। मुखर्जी महोदय उनकी शालीनता, तर्कपूर्ण बहस, कानूनी पकड़ और व्यवसाय-निष्ठा से बड़े प्रभावित हुए। एक दिन उन्होंने राजेन्द्र प्रसाद को बुलाकर कहा कि तुम लॉ कालेज में पढ़ाना शुरु कर दो। एक मुख्य न्यायाधीश की यह मांग उनकी योग्यता का बहुत बड़ा प्रमाण-पत्र था। सच है, योग्य व्यक्ति की योग्यता से सभी प्रभावित होते हैं। सर मुखर्जी से पहले मुख्य न्यायाधीश सर लोरेंस जैन्किंस महोदय ने भी राजेन्द्र प्रसाद की प्रतिभा को पहचान कर उन्हें स्मृति रूप में अपना हस्ताक्षरित फोटो प्रदान किया था।

इस प्रकार जनसेवा के दृढ़ संकल्प और महत्तम त्याग के इरादे के साथ राजेन्द्र प्रसाद ने जीवन क्षेत्र में प्रवेश किया। मार्ग तो उन्होंने निश्चित कर लिया परन्तु अभी किसी पथ-प्रदर्शक गुरु से सम्पर्क नहीं हुआ था। वह सम्पर्क हुआ सन् 1917 में जबकि बिहार के चम्पारण जिले के किसानों ने निलहे (नील का व्यवसाय करने वाले) गोरों के अत्याचारों की कहानी गांधीजी को मालूम हुई। उसी कहानी को सुनकर गांधीजी चम्पारण गये। चम्पारण जाने के रास्ते में वह राजेन्द्र प्रसाद के घर गये। उस समय वह पटना में रह कर वकालत कर रहे थे। इस सम्पर्क

ने उन्हें स्वर्ण से कुंदन बना दिया। गांधीजी के रूप में उन्हें ऐसा पथ-प्रदर्शक प्राप्त हुआ जिसने उन्हें जीवन-दिशा ही नहीं दी, जनता-जनार्दन की सेवा का मंत्र भी दिया। एक सन्त ने दूसरे सन्त का हाथ थाम लिया था।

"हमारे ऋषियों ने हमें सुख से वंचित नहीं किया, मगर सुख को, शारीरिक सुख को, सबसे ऊंचा स्थान भी नहीं दिया।"

— *राजेन्द्र प्रसाद*

7. गांधीजी के कदमों पर

भारत के महापुरुषों की जीवनी से यह नतीजा निकलता है कि उनके जीवन में क्रम अथवा कार्यक्षेत्र की लीक बदलने में संयोग की घटना जबरदस्त रूप से घटी है। यह संयोग की ही बात है कि जिस गोखले के प्रभाव से गांधीजी प्रभावित हुए और उनको गुरु मान बैठे उसी गोखले ने राजेन्द्र प्रसाद की जीवन-दिशा को फेरने में पहल की।

थोड़े समय के बाद 1912 में बिहार प्रान्त बंगाल से अलग किया गया। 1916 में पटना हाइकोर्ट के खुल जाने पर राजेन्द्र प्रसाद पटना चले आये। यहां वकालत में कम और सार्वजनिक काम में भाग लेने का अधिक मौका मिल गया। पटना आने के एक वर्ष बाद ही — संसार का सबसे बड़ा मानव जिसको हम महात्मा नाम से सम्बोधित करते हैं — उस गांधी के राजेन्द्र प्रसाद विश्वसनीय साथी और सहयोगी बन गये। चम्पारण के सत्याग्रह से ही गांधीजी ने भारत में सत्याग्रह का आन्दोलन आरम्भ किया। गांधीजी चम्पारण जाने से पूर्व सर्वप्रथम राजेन्द्र प्रसाद के पटना घर पर आए। चम्पारण के काम में उनको साथी-सहयोगी बनने का निमंत्रण दिया। इस निमंत्रण से राजेन्द्र प्रसाद को गांधीजी के साथ चम्पारण के पीड़ित किसानों के लिए आत्मोत्सर्ग करने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ। चम्पारण में गांधीजी ने अपने कार्य करने की नई पद्धति लोगों को बताई। साथियों को समझाया कि देशसेवकों को किस प्रकार अपना सब काम स्वयं करते हुए त्यागमय सादा जीवन बिताने की आवश्यकता है।

चम्पारण बिहार राज्य का एक जिला है। उस जिले की स्थिति यह थी कि वहां एक बेतियाराज (जमींदार) था। अंग्रेजों ने बेतियाराज को कर्ज दिया था। कर्ज के बदले उस राज की जमीन नीलवर गोरे ने चिरस्थाई रूप से बन्दोबस्त कराई थी। छोटे-छोटे किसानों की वह जमीन थी। उनकी जमीन के एक निश्चित भाग में ''नील की फैक्ट्रियों के लिए'' नील बोने को नीलवर अंग्रेज बाध्य करते थे। किसानों को बहुत परेशान कर, बेगारी कराकर उनसे मनमाना रुपये वसूल करते थे। इससे चम्पारण के किसानों में बहुत दिनों से ''हाहाकार'' मचा हुआ था। चम्पारण की भाषा अर्थात् लोकवाणी भोजपुरी है। सन् 1916 के लखनऊ कांग्रेस

में चम्पारण का एक किसान राजकुमार शुक्ल गांधीजी से मिला। गांधीजी से चम्पारण में नीलवर के जुल्म का बयान किया। गांधीजी ने वहां जाने की दिलचस्पी जाहिर की। गांधीजी ने वचन दिया कि, वह चम्पारण जाकर वहां के किसानों से मिलेंगे और उनका दुख उन्हीं के मुंह से सुनेंगे। चम्पारण जिले का सदर शहर मोतीहारी है। गांधीजी वहां पहुंचे। एक किसान मिला। उसका घर अंग्रेज नीलवर के द्वारा उसी दिन लूटा गया था। गांधीजी उसके घर पर गए। लूट-खसोट के निशान मौजूद थे। गांव में ही गांधीजी को कलेक्टर का आदेश मिला कि वह जिला छोड़कर चले जाएं। उन्होंने जिला छोड़ने से इंकार कर दिया। इसके नतीजे का वह इन्तजार करने लगे। गांधीजी ने वहीं से राजेन्द्र प्रसाद को तार द्वारा घटना की सूचना दी और चम्पारण आने को कहा। राजेन्द्र प्रसाद अपने कुछ साथियों के साथ चम्पारण गये। गांधीजी से मिले। चम्पारण के किसान भोजपुरी (लोकवाणी) के सिवाय दूसरी भाषा नहीं जानते थे। हिन्दी भी नहीं बोल सकते थे। राजेन्द्र प्रसाद भोजपुरी से पूर्व परिचित थे। गांधीजी वहां के किसानों से भी जो भी जानना चाहते थे, उनकी बोली और भाषा राजेन्द्र प्रसाद से सुन समझ लेते थे। राजेन्द्र प्रसाद अपने जिन साथियों के साथ चम्पारण गये थे — उनमें ब्रजकिशोर प्रसाद, धरणीधर, रामनवमी प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह, राम रक्ष ब्रह्मचारी, जनक प्रसाद गोरख बाबू प्रभृति थे। इन लोगों के पहुंचते ही गांधीजी इन लोगों से काम लेने लगे। इन लोगों को किसानों की दुखगाथा लिखने को कहा। ये लोग गांधीजी को उनकी बात हिन्दी और अंग्रेजी में बताने लग गए। राजेन्द्र प्रसाद और ब्रजकिशोर प्रसाद की लगन और परिश्रम को देखकर गांधीजी बहुत प्रभावित हुए। महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि, ''ब्रजकिशोर बाबू और राजेन्द्र बाबू की जोड़ी अद्वितीय थी। उनकी लगन और प्रेम ने मुझे ऐसा अपंग बना दिया कि मैं उनके बिना एक कदम भी आगे नहीं रख सकता था।''

जब राजेन्द्र प्रसाद गांधीजी के चम्पारण काम में सहयोगी बने तब गांधीजी ने राजेन्द्र प्रसाद से दो बातें कही थीं — पहली, मैं जेल चला जाऊं तो चम्पारण के काम को बन्द मत करना और दूसरी, चम्पारण के काम को मैं बहुत महत्व देता हूं, इसलिए कि चम्पारण के काम में जो सफलता मिलने वाली यह सफलता सारे देश के काम में अंग्रेजी सत्ता से मुक्ति दिलवाने के रूप में मिलेगी। इस महात्मा की बात सही निकली। दो वर्षों में चम्पारण से अंग्रेज नीलवर अपनी कोठी और काम बन्द करके विदा हो गये। फिर उसके बाद ही सम्पूर्ण देश में अंग्रेजी सत्ता से मुक्ति के लिए जो काम गांधीजी ने किया उसी का नतीजा था कि 29 वर्षों के बाद (1947) सम्पूर्ण भारत से अंग्रेज अपनी सत्ता और झण्डा स्वयं उखाड़ते हुए इंग्लैण्ड वापस चले गये।

गांधीजी सत्याग्रह का शीतल तेज जानते थे। गांधीजी की कार्यपद्धति का प्रभाव बिहार के अंग्रेजी शासन और भारत सरकार पर पड़ा। गोरे नीलवर की इज्जत-आबरू बचाने के लिए ब्रिटिश सरकार को नीलवर द्वारा किए गए अन्याय दूर करने पड़े। गोरे नीलवर चाहते तो इस देश में रह सकते थे। लेकिन वे तुरन्त समझ गये कि उनका जमाना खतम हो गया है। वे सबके सब इस देश को एक साथ छोड़ गये और सारा भारत गांधीजी की इस विचित्र युद्ध नीति

से और अद्‌भुत विजय से चकित हो गया। गांधीजी ने भ ग्त को पहचाना और भारत ने गांधीजी को पहचाना। गांधीजी की चम्पारण विजय में उनके साथी थे राजेन्द्र प्रसाद। उसी समय से भारत की स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए राजेन्द्र प्रसाद ने सर्वस्व निछावर कर दिया। उसमें उनको पूर्ण सफलता मिली। एक समय था जब बिहार गांधीजी का प्रान्त समझा जाता था और ठीक उसी समय से राजेन्द्र प्रसाद बिहार के गांधी कहे जाने लगे। वास्तव में ये दोनों बातें सही हैं और इसके लिए बिहार को बहुत नाज़ है।

राजेन्द्र प्रसाद का कहना था कि उनको गांधीजी से कई बातों की सीख मिली। जिससे उनको गांधीजी की दूरदर्शिता में, कार्यपरायणता में, दृढ़ता में, उनकी कार्य-पद्धति में एवं उनकी शक्ति तथा नेतृत्व में बहुत विश्वास हो गया। गांधीजी के साथ जैसे-जैसे राजेन्द्र प्रसाद को काम करने का मौका मिलता गया वैसे-वैसे उनके प्रति श्रद्धा बढ़ती गई, विश्वास जमता गया तथा सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह की महिमा को समझते गए।

संसार के विभिन्न देशों से जो लोग भारत-भ्रमण के लिए आते, उनमें प्रमुख रूप से राष्ट्रनायक, पत्रकार, उद्योगपति, प्रोफेसर, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक आदि होते। वे राजेन्द्र प्रसाद से मिलते ही जानना चाहते कि गांधीजी ने इस देश में कौन-सा सिद्धान्त अपनाया अथवा उनकी कार्यपद्धति में क्या खूबी थी जिनसे भारतीय जन-जीवन के सब पहलुओं पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा। जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद और आप जैसे दर्जनों दिग्गज विद्वानों और राजनीतिज्ञों पर ऐसा क्या प्रभाव डाला कि वे सब उनके अंधे अनुयायी बन गये। राजेन्द्र प्रसाद की तरफ से उनको यही उत्तर मिलता कि "गांधीजी ने साधन और साध्य का चुनाव ही कुछ ऐसा किया था जिससे सार्वजनिक जीवन में उनके साथ काम करने वाले को चारित्रिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक बल मिलता था। उनकी सारी प्रवृत्तियों में सत्य जुड़ा हुआ रहता था। सत्य को वे ईश्वर से अलग नहीं मानते थे। किसी काम के लिए असत्य का कदापि सहारा नहीं लेते थे। किसी काम को पूरा करने के पीछे जिन दो शक्तियों का उपयोग वे करते थे, वे थीं — अहिंसा, और सत्य के प्रति आग्रह। इस काम में लगाने के लिए गांधीजी में कार्यकर्ता चुनने और बनाने की बहुत बड़ी शक्ति थी।" उस शक्ति का परिचय सबसे पहले राजेन्द्र प्रसाद को चम्पारण में मिला।

गांधीजी में काम करने का एक जादूगर-सा अद्‌भुत ढंग था। गांधीजी का जीवन अविभाज्य और सम्पूर्ण था। उनकी सारी प्रवृत्तियां एक-दूसरे में गुंथी हुई थीं। ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध उनके शान्तिपूर्ण विद्रोह में भी उनकी गहरी नैतिक भावना ही थी। उन्हें यह देखकर गहरा आघात लगा था कि, भारतवासी ब्रिटिश शासन के बुरे असर से इतने ज्यादा पतित हो गये हैं कि जो अनुभव करते हैं उसे वे कह नहीं सकते। गुलामी का कायरतापूर्ण जीवन एक जीता-जागता सत्य तथा ईश्वर से इंकार जैसा बन गया था। चम्पारण का काम हाथ में लेते ही उनको यह अनुभव हो गया था।

राजेन्द्र प्रसाद चम्पारण के किसानों के बयान लिखते। जहां जिसकी जमीन दखल कर

ली गई थी उसे देखने जाते। एक दिन राजेन्द्र प्रसाद गांधीजी से कहने लगे, हम लोगों के सामने स्वतंत्र होकर बयान लेना और लिखना एक समस्या है। गांधीजी ने पूछा, क्या बात है? राजेन्द्र प्रसाद ने कहा, ''जहां हम लोग किसान से बयान लेने बैठते हैं वहीं सी.आई.डी. पुलिस भी आकर बैठती — बयान लेते हुए किसानों की बात सुनती और उसे नोट करती रहती है। इस वजह से खुलकर वह अपनी दुख-गाथा कह नहीं पाते और डरते हैं। इतनी बात सुनने के साथ ही — गांधीजी ने कहा — यह डर तुम लोगों को मन में नहीं लाना चाहिए। उस पुलिस के आदमी के लिए तो मन में बैठा लो कि, तुम्हारे सामने इतने किसान होते हैं — उनमें एक वह भी है। जब ऐसा उनके प्रति मन में बैठा लोगे तो तुम्हारे सामने पुलिस और किसान में कोई विशेष अन्तर नजर नहीं आएगा। तुम्हारे सामने इन भोले-भाले पीड़ित किसानों के लिए बहुत काम करना बाकी है। इनके दिल से इस प्रकार के सारे भय को दूर करना है। तुम्हारे पास नहीं आने के लिए जाने उन पर कितना दबाव पड़ा है। दमन का चक्र उन पर हर समय चल रहा है। यह सब एक-एक कर निर्भीकता के साथ काम कर उनके सारे भय और दमन को दूर करना है। दूसरे दिन गांधीजी वहां गये जहां किसानों के बयान लिखे जा रहे थे। सी.आई.डी. पुलिस के आदमी बैठे नोट कर रहे थे। उसी समय गांधीजी ने किसानों से कहा कि, आप लोग अपनी-अपनी शिकायत, आप पर क्या बीत रही है, कहां किस पर किस तरह का जुल्म हो रहा है, किसकी कितनी जमीन किस साहब के पास है, सभी बातें दिल खोलकर बिना डर के सही-सही लिखाते जाएं। जिनकी जैसी शिकायत होगी, जो जितनी मुसीबत में फंसे होंगे उसी के अनुसार उनकी तकलीफ दूर करने के रास्ते निकाले जायेंगे। हम सब आपकी सेवा के लिए यहां आए हुए हैं। आप पुलिस वालों से न डरें। इनको अपनों से अलग न मानें। उनका भी फर्ज आपकी सेवा करना है। जैसे आप हैं वैसे ही वे भी अपने घर पर किसान ही होंगे। इसलिए यह मन से उठा रखें कि वे पुलिस के आदमी भयावह हैं। हमारे यहां जो भी आते हैं उनको हम किसान ही मानते हैं। आप सब उनको अपने यहां अपना साथी ही मानें। यह सुनकर पुलिस के आदमी को काठ मार गया। बयान लेने वाले वकील साथियों का उत्साह बढ़ा। गांधीजी की बात सुनकर किसान सब हंस पड़े। उनमें साहस आया।

गांधीजी अपने साथ काम करने वाले कार्यकर्ताओं को इसी प्रकार की सीख एवं साहस देते थे। गांधीजी के काम करने की पद्धति में छिपाव, दुराव अथवा असत्य का भाव नहीं रहा करता था। बगैर लुक छिप कर काम करके उन्होंने देश को जगाया, बढ़ाया और स्वराज्य पाने योग्य बनाया। राजेन्द्र प्रसाद का कहना था कि गांधीजी के कदमों पर चलने से ही हमारी राजनीति घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, होड़, प्रलोभन से न केवल दूर रही बल्कि प्रेम, भाई-चारा और उदार सेवक बनना सिखाती रही है। हम सबको गांधीजी ने लड़ाकू नहीं, नैतिक बल का प्रबल सिपाही बनाया है।

सार्वजनिक सेवा करने वाले को कैसा होना चाहिए और सार्वजनिक सेवा के कौन-कौन से गुण सार्वजनिक कार्यकर्ताओं में होने चाहिए यह भी गांधीजी ने काम करते-करते बताया।

राजेन्द्र प्रसाद ने गांधीजी के साथ काम करते-करते सेवा का व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त किया। सार्वजनिक सेवा और उसके सेवक होने का प्रशिक्षण, कठिन साधना और तपस्या का है। यह प्रशिक्षण व्यवसाध्य नहीं, बल्कि समयसाध्य है। सेवा के जितने भी क्षेत्र हैं चाहे वह प्रशासनिक सेवा का हो, अथवा डाक्टरी, इंजीनियरिंग, अध्यापन, आचार्य के क्षेत्र हों — इन सब कामों के पीछे जो प्रशिक्षण है, उससे भिन्न श्रम तथा साधना साध्य प्रशिक्षण सार्वजनिक सेवा का है। जो लोग इस प्रकार की शिक्षा और प्रशिक्षण के बाद देश सेवा के काम में आए उनसे देश तथा समाज की अच्छी सेवा ही नहीं हुई बल्कि देश ने भी अपने को सुरक्षित मानते हुए उन पर पूरा भरोसा किया। कोई भी सेवा बगैर शिक्षण-प्रशिक्षण के नहीं होती।

राजेन्द्र प्रसाद उन सभी मार्गों से होकर गुजरे — जो जो मार्ग गांधीजी ने उनको बताया। बड़े से बड़े काम को छोटे से छोटे पैमाने पर कैसे शुरु किया जा सकता है — उसमें बड़ी से बड़ी सफलता कैसे प्राप्त की जा सकती है यह उन्होंने गांधीजी से सीखा। गांधीजी के साथ चम्पारण में काम करते समय ही उनके सारे सिद्धान्त, विचार और काम करने तथा दूसरे से काम लेने की पद्धति से उनका परिचय हो गया। गरीब देश में गरीब की तरह रहकर गरीबों की सेवा कैसे की जा सकती है — इसे गांधीजी ने सिखाया। गांधीवाद जिसे राजेन्द्र प्रसाद ने अपनाया उनके मूल को उन्होंने समझा। अपने आचरणों को अधिक से अधिक शुद्ध बनाना — यही है गांधी मार्ग। लोक-सेवा, देश-सेवा के मैदान में उतरने के पहले सर्वप्रथम स्वयंसेवक होना आवश्यक है। इसको राजेन्द्र प्रसाद ने चम्पारण में सीखा।

चम्पारण में गांधीजी के साथ काम करने वालों की संख्या बढ़ गई। उन सबके जीवन आश्रमी जीवन बन गये। चार बजे सवेरे उठना, आश्रम की प्रार्थना में शरीक होना, 6 बजे तक अपने सभी कामों से निवृत्त होना आदि। राजेन्द्र प्रसाद अपनी आत्म-कथा में लिखते हैं, कि ''हम लोग सवेरे 6 बजे से स्नानादि से निवृत्त होकर बयान लिखने लगते। दिन के ग्यारह बजे तक लिखते। फिर भोजन और आराम के बाद एक या डेढ़ बजे से 5 बजे तक बयान लेते, फिर संध्या का भोजन करते और गांधीजी के साथ टहलने निकल जाते। बीच में ऐसा बयान आता जिसे गांधीजी को बताना जरूरी समझा जाता तो वह तुरन्त कह दिया जाता — या नहीं तो बयान लिख-लिख कर देते जाते और वह पढ़ते जाते। इस प्रकार प्रायः बाइस अथवा पच्चीस हजार रैयतों के बयान लिखे गये। इनसे सारे जिले में हलचल मच गई। रैयतों के दिल से न जाने डर कहां चला गया। जो अदालत के नाम से डरते थे वे गांधीजी के पास बहुत बड़ी संख्या में जाकर अपना दुख बताने लगे। उन लोगों के सीधे-सादे हृदय पर न मालूम कहां से यह अमिट छाप पड़ गई कि उनका उद्धारक आ गया। अब उनका दुख दूर हो जाएगा। आगे लिखते हैं: ''चम्पारण में ही दीनबन्धु एण्डरुज से मुलाकात हुई।

इस तरह का अंग्रेज जो बेतरतीब कपड़े पहने हो, जो एक्का पर चढ़ता हो और हिन्दोस्तानियों से खुलकर मिलता-जुलता हो — हमने अपने होश में नहीं देखा था। यह भी सुना था कि वह एक प्रतिष्ठित आदमी है जिसकी पहचान वायसराय से है और जो दुनिया भर में चक्कर लगाया

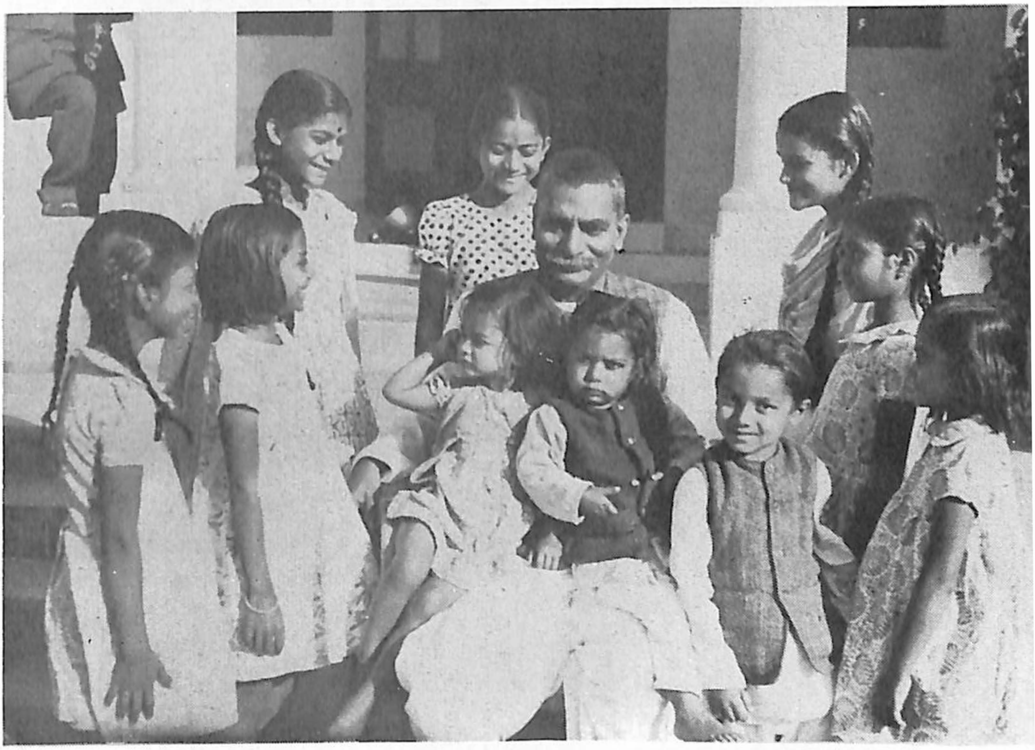

डा० राजेन्द्र प्रसाद बच्चों के साथ

गांधीजी की बड़ी बहन रलियत बेन के साथ, 1959

साबरमती आश्रम में

आंध्र प्रदेश के गोदावरी जिले में अप्रेल 1961 में आयोजित तेरहवें अखिल भारतीय सर्वोदय सम्मेलन को संबोधित करते हुए

देशबंधु चितरंजन दास की पत्नी श्रीमती बसंती देवी के साथ, जून 1955

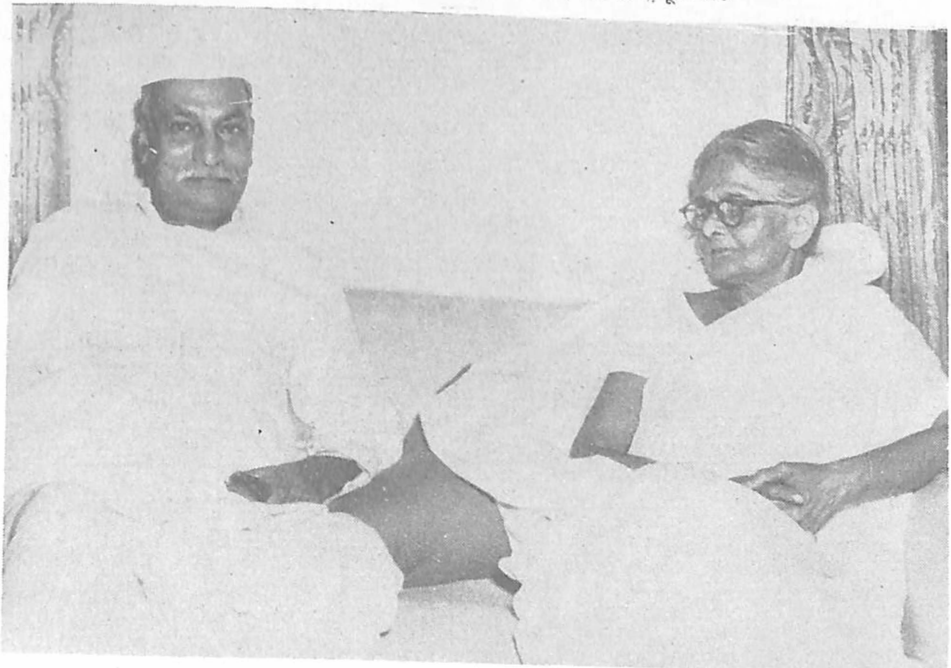

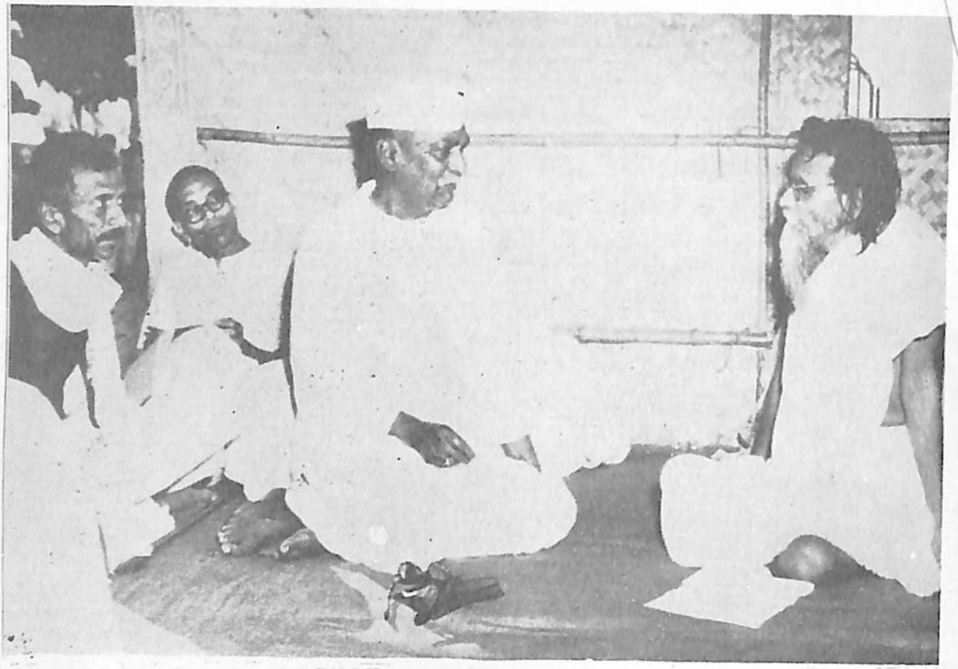

आचार्य विनोबा भावे के साथ, सर्वोदय नगर (पुरी) में, मार्च 1955

जनसमूह को संबोधित करते हुए, जून 1955

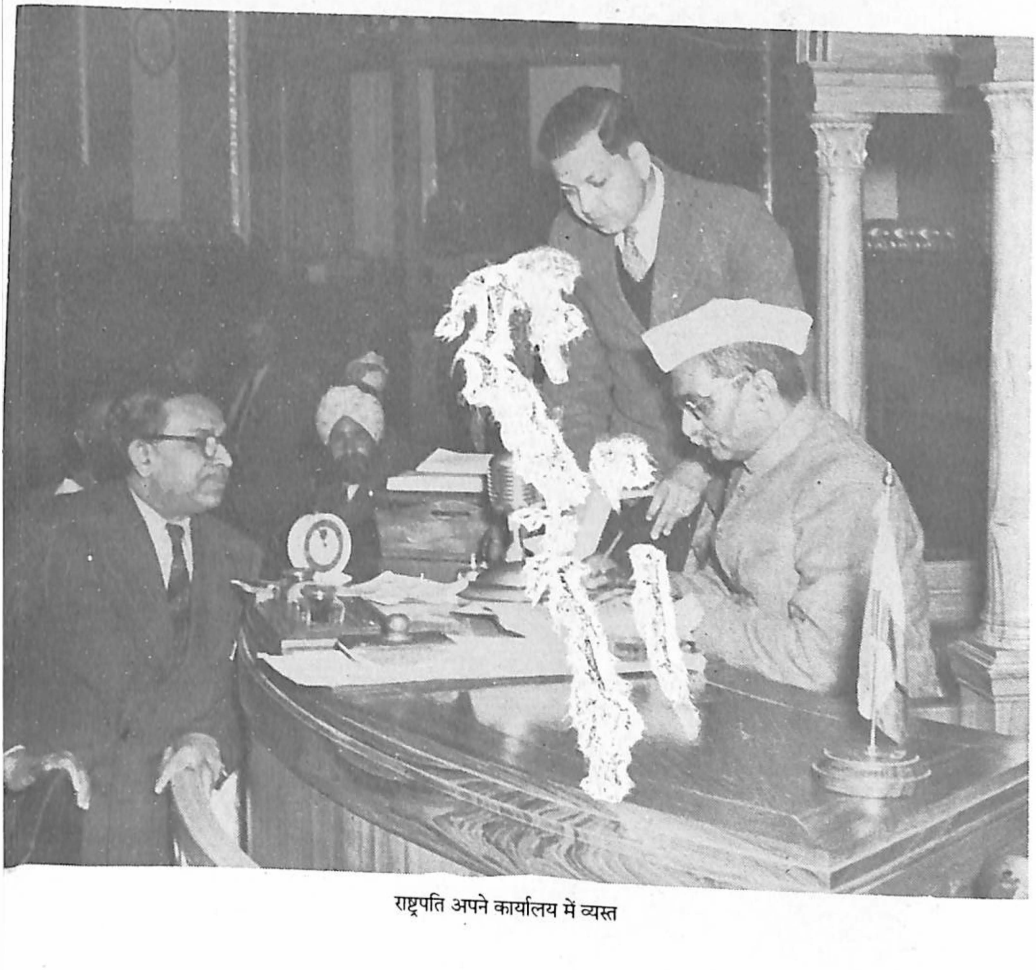

राष्ट्रपति अपने कार्यालय में व्यस्त

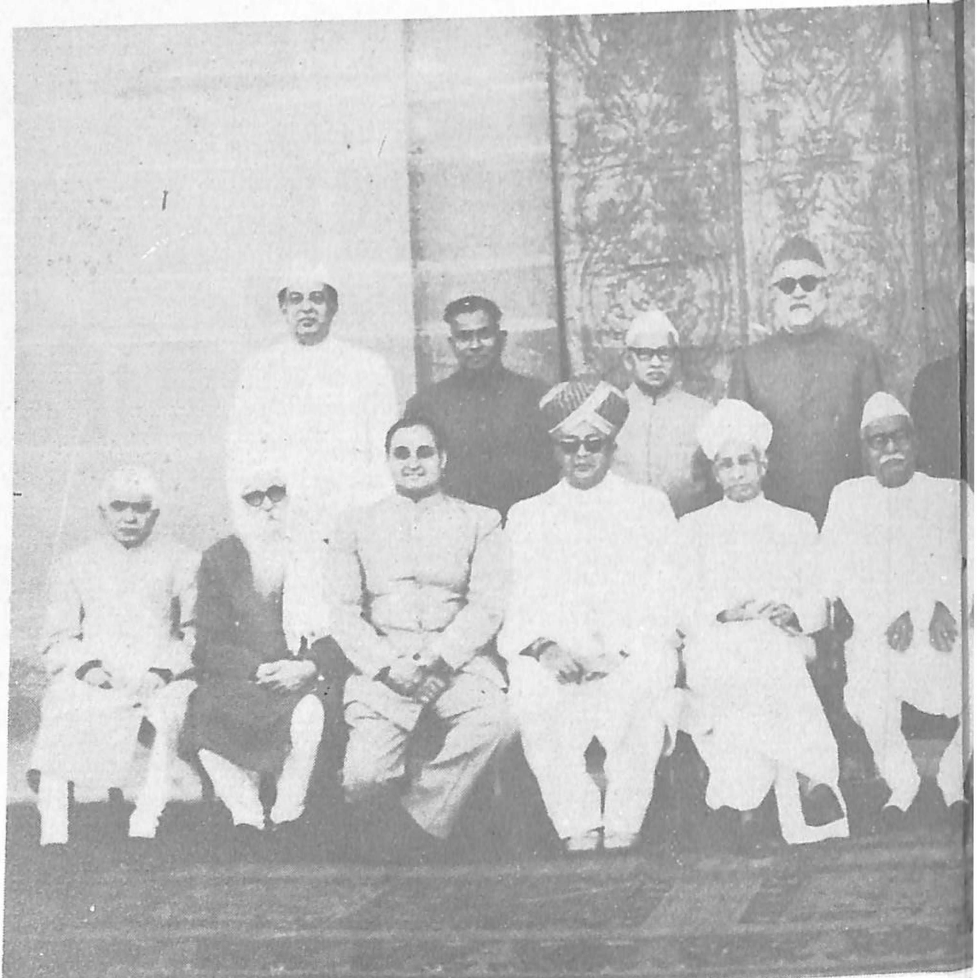

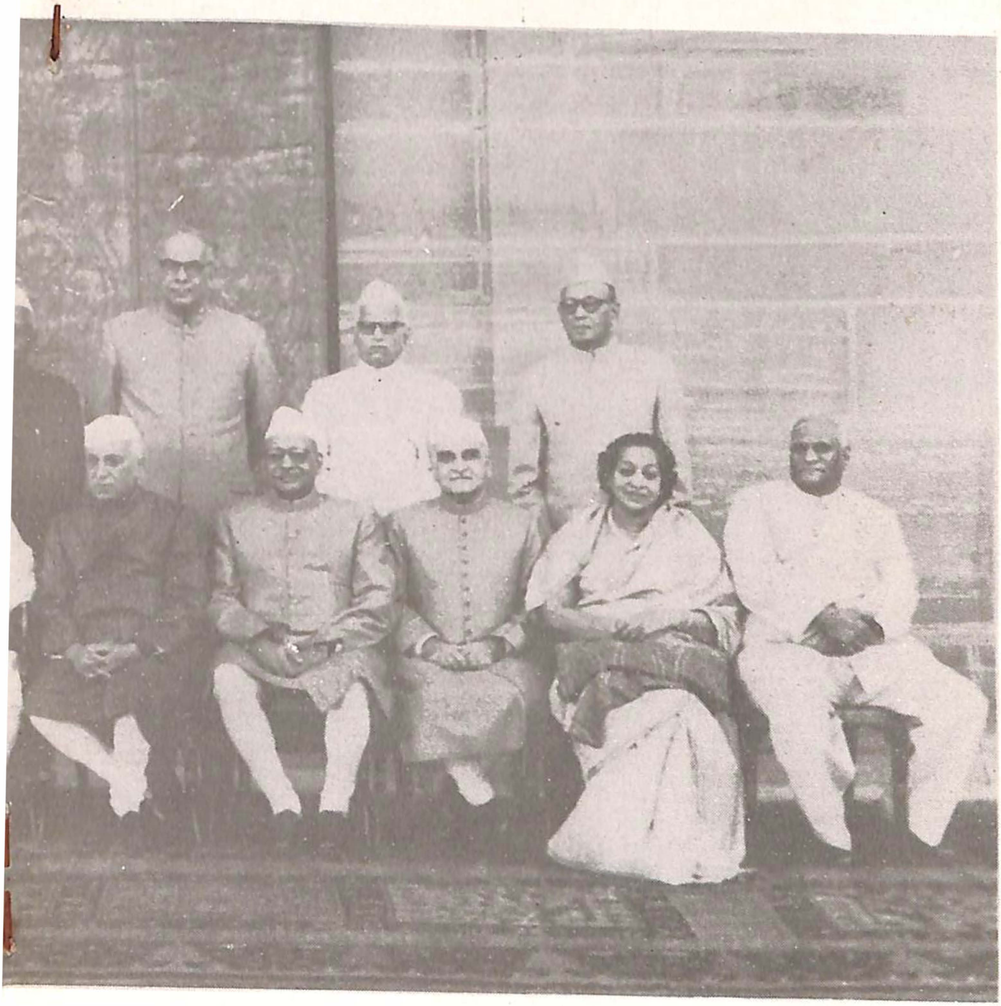

विभिन्न राज्यों के राज्यपालों के साथ, नवंबर 1960

डा० राधाकृष्णन और पंडित जवाहरलाल नेहरु के साथ, दिसंबर 1958

राष्ट्रपति भवन के अहाते में वृक्षारोपण करते हुए, जून 1954

हो ची मिन्ह के साथ

पंडित जवाहलाल नेहरु और सरदार पटेल के साथ

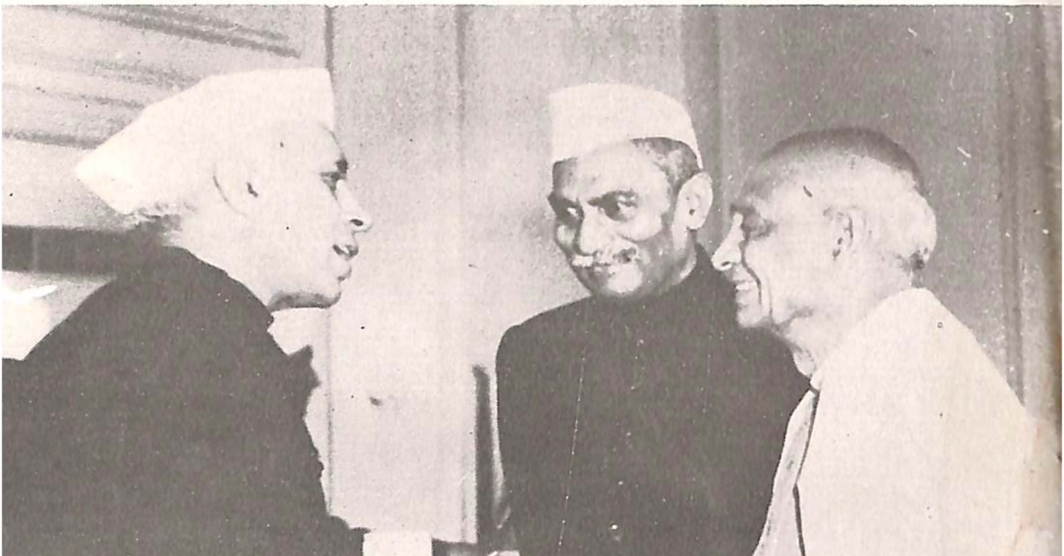

राष्ट्रपति भवन के अमले के सदस्यों के साथ, मई 1957

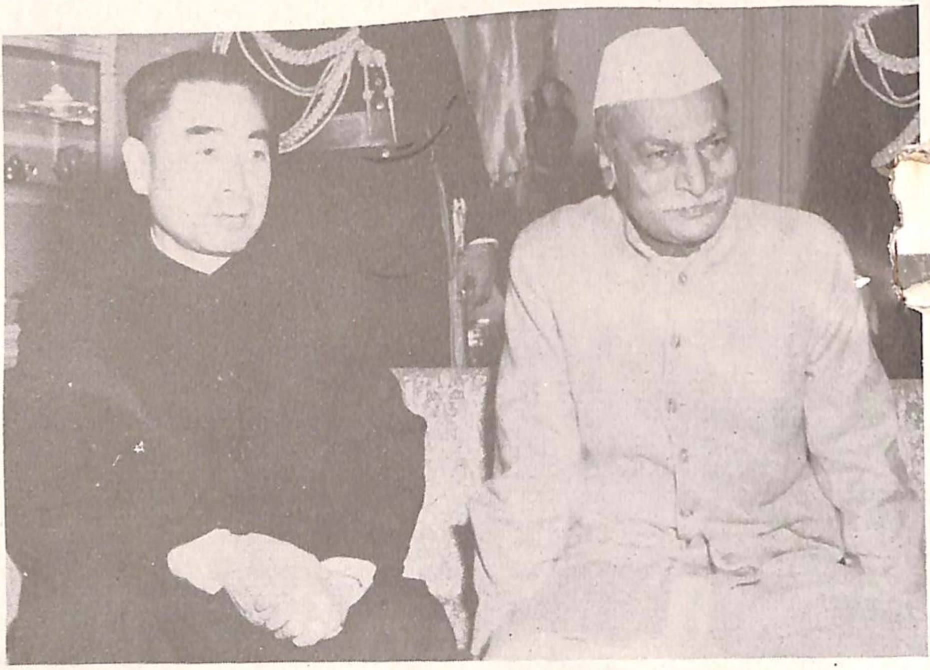

चाऊ एन लाई के साथ राष्ट्रपति भवन में, नवंबर 1956

डा० राजेन्द्र प्रसाद डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के साथ, रामलीला मैदान में, मई 1962

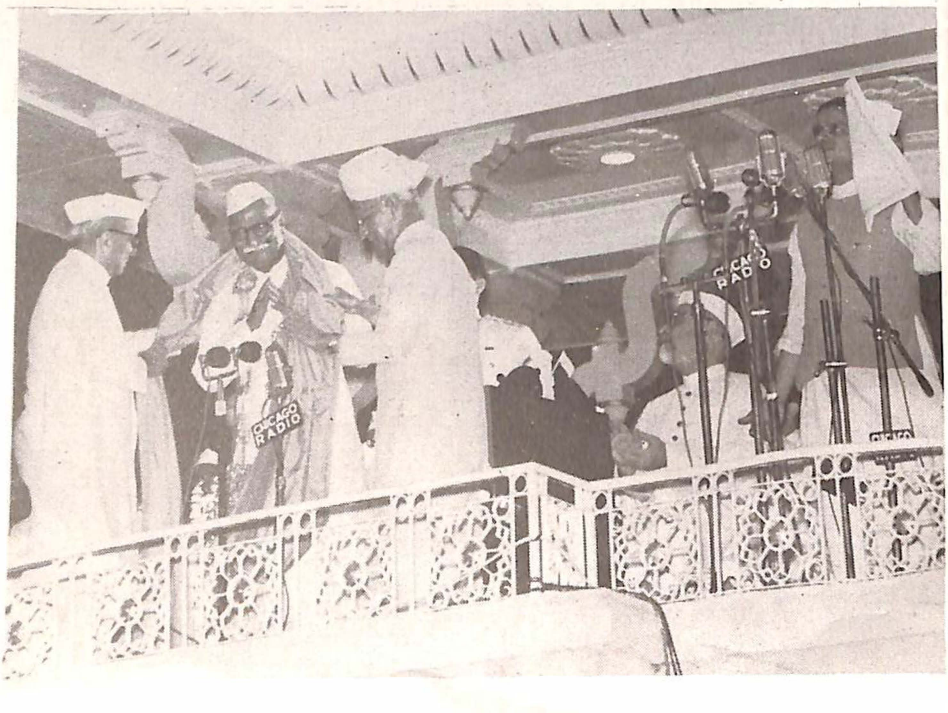

करता है। उस समय उनसे मुलाकात हुई। उनकी सादगी और सच्चाई की जो छाप पड़ी वह दिन-दिन गहरी होती गई। मेरे साथ तो मानो एक प्रकार का बन्धुत्व स्थापित हो गया जो उनके मरते समय तक बना रहा।''

एक दिन राजेन्द्र प्रसाद कुएं पर स्वयं पानी भर रहे थे। अपने कपड़े में साबुन लगाकर धो रहे थे। गांधीजी ने देखा और मजाक से कहा — आखिर मैंने पटना हाईकोर्ट के वकील से कपड़े साफ करा लिये। उसी समय गांधीजी ने यह भी कहा था कि मेरे यहां काम करने में उसकी सफलता का यह बहुत बड़ा चिन्ह मिल रहा है। अब हम लोग यहां से कामयाब होकर जाएंगे। इधर चम्पारण के किसानों को उनकी गुलामी से मुक्ति दिलाने का काम चल रहा था — उधर गुजरात में वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में खेड़ा के किसान सत्याग्रह कर रहे थे। राजेन्द्र प्रसाद वहां भी गये। इस सम्बंध में वल्लभभाई पटेल ने लिखा, ''सन् 1918 के खेड़ा सत्याग्रह की लड़ाई के दिनों में राजेन्द्र बाबू से पहली बार मिलना हुआ था। उसी समय से उनके प्रति मेरे दिल में जो आकर्षण उत्पन्न हुआ और हम दोनों के बीच प्रेम की जो गांठ बन्धी वह अब तक बन्धी हुई है। राजेन्द्र बाबू को देखते ही उनकी सरलता और नम्रता की छाप हमारे दिल पर पड़ती है।''

चम्पारण से लौटने के बाद राजेन्द्र प्रसाद का जीवन एक सार्वजनिक जीवन बन गया। इस सम्बंध में वह अपनी आत्मकथा में लिखते हैं: ''चम्पारण ने हमारे जीवन पर भी बहुत बड़ा असर डाला। वहीं हम लोगों ने जाति पाँति का भेद छोड़ा। ज़िन्दगी में सादगी भी बहुत आ गई। हम लोगों के साथ नौकर थे। वे सब एक-एक कर हटा दिए गए। अपने हाथों से कुएँ से पानी भर लेना, नहाना, कपड़े साफ कर लेना, अपने जूठे बर्तन को धोना, रसोई घर में तरकारी बनाना, चावल धोना इत्यादि सब काम हम ख़ुद किया करते थे। कहीं जाना होता तो तीसरे दर्जे में सफर करना और जहां तक हो सके, पैदल चलना, सब कुछ वहां हमने गांधीजी से सीखा। आराम का जीवन छोड़ देना पड़ा।''

चम्पारण में सत्याग्रह का वही रूप था, जो गांधीजी ने थोड़े दिनों के बाद असहयोग आन्दोलन द्वारा देशव्यापी पैमाने पर किया। एक जिले के दुख दूर करने में प्रायः एक बरस लग गया था। सम्पूर्ण भारत को आजाद कराने में उसी अनुपात से जो समय लगना चाहिए था — वही लगा।

गांधीजी के चम्पारण जाने के बाद बिहार का नाम भारत के नक्शे में उभरा। कांग्रेस तथा जहां तहां सार्वजनिक सेवा के रूप में बिहार का नाम आगे आने लगा। बिहार का नाम गांधीजी के साथ जुड़ गया इसलिए कलकत्ते में कांग्रेस के समय बिहार के अधिकतर प्रतिनिधियों कागांधीजी की छावनी में ठहरना हुआ। वहां सेठ जमनालाल बजाज का प्रबन्ध था। सेठजी से राजेन्द्र प्रसाद की यह पहली मुलाकात थी। उसके बाद राजेन्द्र प्रसाद से सेठजी का निकटतम सम्बंध जीवन भर बना रहा।

8. मशहूर वकील

वकालत में राजेन्द्र प्रसाद की अच्छी ख्याति हुई। इसके मुख्य दो कारण थे। कलकत्ता लॉ कालिज में पढ़ते समय ही वे कलकत्ता हाईकोर्ट के एक अच्छे बैरिस्टर शमसुलहुदा साहब के साथ काम करते हुए वकालत की तैयारी में लग गये थे। उनके सभी मुकदमों का सारांश नोट तैयार कर देते। उस मुकदमे में कानून की पुस्तक से नज़ीर दिया करते। उसके अनुसार बहस के लिए मुद्दा तैयार कर देते। फिर उनके साथ हाईकोर्ट जाकर उनकी बहस सुनते। दूसरे वकील बैरिस्टर की बहस को भी सुनकर कानून के व्यावहारिक ज्ञान को प्राप्त करते। दिन भर परिश्रम के बाद रात को लॉ कालिज में पढ़ते। लॉ कालिज की परीक्षा में इसका फल उनको ऐसा प्राप्त हुआ कि वह कलकत्ता विश्वविद्यालय की एम.एल. की परीक्षा में सर्वप्रथम आये।

कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत शुरु करते ही मुकदमे मिलने लगे। प्रायः सभी मुकदमे गरीब मुवक्किलों के ही आते थे। शुरु से ही राजेन्द्र प्रसाद जिस मुकदमे को अपने हाथ में लेते उसमें दूसरे सीनियर या जूनियर वकील नहीं होते थे। इसलिए उस मुकदमे का सारा काम वह स्वयं करते थे। इस प्रकार मुवक्किलों का काम कम खर्च में ही हो जाता था। शुरु से ही मुकदमे की बहस में हाईकोर्ट के जजों से जान-पहचान हो गई। राजेन्द्र प्रसाद ने जिस समय कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत शुरु की — उस समय वहां के मुख्य न्यायाधीश सर लौरेन्स जैन्किन्स थे। डेढ़ साल के बाद लौरेन्स जैन्किन्स ने अवकाश ग्रहण कर लिया। उसी डेढ़ साल में राजेन्द्र प्रसाद की बहस से वे इतने प्रसन्न थे कि जाते समय उनको अपने घर पर बुलाकर अपने हस्ताक्षर के साथ फोटो दे गये। उसके बाद सर आशुतोष मुखर्जी वहां के मुख्य न्यायाधीश हुए।

राजेन्द्र प्रसाद सर आशुतोष मुखर्जी के कोर्ट में एक दिन बहस कर रहे थे। सर आशुतोष मुखर्जी इनकी बहस सुनकर बहुत प्रभावित हुए। कोर्ट समाप्त होने पर उन्होंने राजेन्द्र प्रसाद को घर बुलाया। इस घटना के सम्बंध में राजेन्द्र प्रसाद अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि "जब मेरी बुलाहट हुई तब पहले घबराया। सोचा, आज उनकी कोर्ट में बहस के समय कोई

अनियमित बात हो गई। मुख्य न्यायाधीश सर आशुतोष मुखर्जी केवल जज ही नहीं थे — देश के प्रसिद्ध पुरुष थे। इनका किसी जूनियर वकील को अपने घर पर बुलाना एक असाधारण घटना थी। अतः वे घबराहट और अनिश्चित भाव में गये। न्यायमूर्ति सर आशुतोष मुखर्जी स्नेहपूर्वक मिले। राजेन्द्र प्रसाद को कोर्ट में की गई बहस के लिए बधाई दी। पूछा — "कितने दिनों से कोर्ट में काम करने लगे हो? कहां रहते हो? इस पेशे में नया नया आने पर कैसा लगा, इत्यादि? परिचयात्मक बातचीत के बाद मुख्य न्यायाधीश मुखर्जी ने कहा — "मैं तुम्हारी बहस से बहुत प्रभावित हुआ हूं। यों तो तुम्हारा नाम पहले से सुना था। तुम्हारी चर्चा एंट्रेंस की परीक्षा में सर्वप्रथम आने पर हुई थी। अब तक तुमसे प्रत्यक्ष मिलने का मौका नहीं आया था। बहस सुनने पर लगा कि तुम अच्छी तरह तैयार होकर कोर्ट आते हो। एक खास उद्देश्य से तुम्हें बुलाया है। तुमसे जानना चाहता हूं कि तुम्हारे पास समय हो तो लॉ कालिज में पढ़ाने के लिए समय दो।" राजेन्द्र प्रसाद उनकी यह बात सुनकर कुछ आश्चर्य और कुछ असमंजस में पड़ गये। तुरन्त हां या ना में जवाब देते न बना। कुछ देर ऊहा-पोह में रहने के बाद कहा — बाद में सोचकर कहूंगा। मुझे इसके लिए अपने भाई से पूछना पड़ेगा। निवास स्थान पर लौटकर अपने बड़े भाई से मुख्य न्यायाधीश द्वारा बुलाये जाने का कारण बताया। बड़े भाई महेन्द्र प्रसाद ने कहा तुमको यह काम स्वीकार कर लेना चाहिए। दूसरे दिन अपनी स्वीकृति भेज दी। इस प्रकार कलकत्ता लॉ कालिज के प्रोफेसर हो गये।

एकमात्र बाबू हरिजी जमींदार के मुकदमे में शुरु से अन्त तक काम करते रहे। डुमरांव महाराजा के साथ हरिजी के मुकदमे को लेकर राजेन्द्र प्रसाद लंडन प्रिवी कौंसिल भी गये। बाबू हरिजी राजेन्द्र प्रसाद की प्रतिभा और प्रत्युत्पन्नमति के बहुत कायल थे। इसलिए उन्होंने इनसे यह वचन ले लिया था कि वह वकालत छोड़ भी देंगे तब भी जहां-तहां और जब तब उनके मुकदमे में काम कर दिया करेंगे। उसी वचन को पूरा करने के लिए वे 1928 में लंडन वकालत के काम से गये थे। लंदन में इनकी तरफ से वहां के दो सीनियर बैरिस्टरों में एक श्री लस्कर और दूसरे श्री अपजौन थे। दोनों ने राजेन्द्र प्रसाद की बुद्धि और तैयार किए गये नोट की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उस मुकदमे में पन्द्रह हजार पेज के कागज तैयार छपे थे। राजेन्द्र प्रसाद को प्रत्येक पृष्ठ की बात याद थी। वहां के बैरिस्टर जिस बात को जानना चाहते उसे वे तुरन्त दिखा दिया करते थे। भारत का, एक मामूली वेष-भूषा का आदमी अंग्रेजी और कानून में ऐसी योग्यता रखने वाला भी हो सकता है इसने उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया। जब उनको यह मालूम हुआ कि इस वकील ने गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में अपनी वकालत छोड़ दी है तब और भी आश्चर्य हुआ। लंदन के दोनों सीनियर बैरिस्टर कहने लगे — गांधीजी का अपने देश की आजादी के लिए असहयोग आन्दोलन अच्छा मालूम पड़ता है। आप देश की आजादी के लिए उस आन्दोलन में शरीक हुए हैं यह भी ठीक है — पर, गांधीजी ने आप जैसे प्रतिभावान वकील से वकालत छुड़वाकर वकालत के पेशे को जबरदस्त धक्का पहुंचाया है। आपको इसी पेशे में रहना चाहिए। इस काम में रहकर भी देश की अच्छी सेवा कर सकते थे। क्या फिर,

इस पेशे में आ सकते हो? राजेन्द्र प्रसाद ने इसके उत्तर में ना कहकर इस मुकदमे के काम के लिए वचन देने की पूरी कहानी सुना दी।

9. असहयोग आन्दोलन बनाम सेवा के क्षेत्र में

चम्पारण में राजेन्द्र प्रसाद के काम और स्वभाव से गांधीजी बहुत प्रभावित हुए। गांधीजी के नेतृत्व में रौलट बिल के विरूद्ध आन्दोलन हुआ। उसी समय गांधीजी ने "यंग इंडिया" का प्रकाशन प्रारम्भ किया। उसी के माध्यम से वह अहिंसात्मक सत्याग्रह की ध्वनि करते रहे। गांधीजी अहमदाबाद से महादेव भाई के साथ दिल्ली आ रहे थे। रास्ते में गांधीजी गिरफ़ार कर, लिए गये। महादेव भाई ने राजेन्द्र प्रसाद को तार भेजकर अहमदाबाद आने को कहा। राजेन्द्र प्रसाद बम्बई होते हुए अहमदाबाद पहुंचे। गांधीजी तब तक छोड़ दिए गये। गांधीजी अहमदाबाद आये। वहीं राजेन्द्र प्रसाद से मुलाकात हुई। वह गांधीजी के प्रत्येक काम में साथ देते थे। इस प्रकार वह एक के बाद एक उनके आन्दोलन में साथ देते रहे। गांधीजी की गिरफ़ारी के बाद महादेव भाई ने राजेन्द्र प्रसाद को इसलिए बुलाया था कि, सत्याग्रह संचालन का भार उन्हें उठाने को कहा जाए। गांधीजी का सत्याग्रह एक पर्व था। वह सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह को एक दूसरे का पूरक मानते थे। गांधीजी सत्याग्रहियों से एक प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर लेते थे। अहिंसा का पालन करते हुए सरकार के ऐसे कानून को न मानना जिन्हें तोड़ने की आज्ञा एक मनोनीत कमेटी दे, यह कमेटी गांधीजी द्वारा बनाई गई थी। उस कमेटी में गांधीजी ने राजेन्द्र प्रसाद को रखा।

रौलट एक्ट के विरोध में 6 अप्रैल से 13 अप्रैल तक देशव्यापी सभा, जुलूस और हड़ताल रहा। खिलाफत कमेटियों में देशबन्धु चितरंजन दास, बैरिस्टर जयकर, श्री अब्बास तैयेबजी, मौलाना शौकत अली, मौलाना मुहम्मद अली, मौलाना अबुल कलाम आजाद, प्रभृति मुसलमान नेता गांधीजी के नेतृत्व में जुट गये। इस काम में राजेन्द्र प्रसाद ने बिहार का नेतृत्व सम्भाल लिया। देश भर में अंग्रेजी राज के विरूद्ध असहयोग करने की धूम मची।

अप्रैल 1920 में मौलाना शौकत अली पटना आये। राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में बड़ी सभा हुई। पंडित मोतीलाल नेहरु और देशबन्धु चितरंजन दास भी मौजूद थे। यह दोनों राजेन्द्र प्रसाद के साथ बर्मा वाले मुकदमे में पटना हाईकोर्ट में काम कर रहे थे। उस मुकदमे में एक साथ काम करने की वजह से इन दोनों के साथ घनिष्ठता बढ़ गई थी।

राजेन्द्र प्रसाद ने इस सभा में असहयोग में शरीक होने का वचन दे दिया। कांग्रेस ने असहयोग सम्बंधी अपना फैसला बा ज़ाप्ता घोषित नहीं किया था। इसके पूर्व ही राजेन्द्र प्रसाद ने कहा: देश अगर असहयोग आन्दोलन करने का निश्चय करेगा तो इस निश्चय के अनुसार बिहार में जन असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया जाएगा।

राजेन्द्र प्रसाद की ख्याति प्राप्त वकालत अंतिम मंजिल पर थी। उस समय मजहरुल हक साहब बिहार के नामी बैरिस्टर ही नहीं बिहार के सबसे बड़े नेता थे। राजेन्द्र प्रसाद को वह कौंसिल में भेजना चाहते थे। राजेन्द्र प्रसाद असहयोग की घोषणा कर वकालत और कौंसिल दोनों से मुक्त हो गये। मौलाना शौकत अली से राजेन्द्र प्रसाद की यह पहली मुलाकात थी। राजेन्द्र प्रसाद के भाषण से वह बहुत प्रभावित हुए। असहयोग का सूत्रपात अचानक इस सभा में हुआ।

अगस्त 1920 में बिहार प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन ने राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव पास किया। सितम्बर 1920 में लाला लाजपतराय के सभापतित्व में कलकत्ता कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव पास हुआ। असहयोग आन्दोलन के समर्थन में बिहार ने सर्वप्रथम प्रस्ताव पास किया। यहं संयोग की ही घटना कही जाएगी, प्रस्ताव पास करते ही राजेन्द्र प्रसाद ने वकालत को तिलांजलि देकर कोर्ट कचहरी जाना बन्द कर दिया। गांधीजी के साथ रहकर सेवा करना और सादी पोशाक पहनना शुरु कर दिया। उस पोशाक के साथ असहयोग का बाना लेकर इस आन्दोलन में वह कूद पड़े। गांधीजी की कार्य पद्धति से राजेन्द्र प्रसाद परिचित थे। उस पद्धति से इस आन्दोलन को बिहार में सफलता मिली। राजेन्द्र प्रसाद के निमंत्रण पर गांधीजी बिहार का दौरा करने आये। उससे इस आन्दोलन की सफलता में चार चांद लग गये।

असहयोग आन्दोलन की मुख्य भूमिका सरकारी भवनों से निकल कर गांधीजी के सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह को अंगीकार कर भारत को स्वतंत्र करना थी। देश के बड़े से बड़े वकील, बैरिस्टर, डाक्टर, प्राध्यापक, विद्यार्थियों ने अपने उज्जवल भविष्य का त्याग किया। सब ने आराम आमदनी को छोड़कर फकीरी धारण की, असहयोग की पद्धति में किसी का नुकसान करना नहीं था। केवल अंग्रेजी शासन से मुक्ति थी। विदेशी सत्ता से मुक्त होकर भारत को स्वतंत्र करना था। राजेन्द्र प्रसाद पहले ही गांधीजी के रास्ते को अपना कर फकीरी धारण कर चुके थे। असहयोग आन्दोलन में भाग लेने वाली विद्यार्थियों की एक टोली राजेन्द्र प्रसाद के सामने आयी। उसका नेतृत्व जयप्रकाश नारायण कर रहे थे, उस टोली को लेकर राजेन्द्र प्रसाद मौलाना मजहरुल हक से मिलने गये। हक साहब के पास पटना और दानापुर के बीच जमीन और बाग था, उसी जमीन और बाग में बिहार विद्यापीठ की स्थापना की गई। इसमें कालेज की पढ़ाई होने लगी। स्वयं राजेन्द्र प्रसाद उसके प्राचार्य हुए। हिन्दु मुस्लिम एकता के ख्याल से उस स्थान का नाम 'सदाकत आश्रम' रखा गया। गांधीजी बिहार के दौरे पर आये। उनको साठ हजार की थैली भेंट की गयी। वह थैली इन विद्यालयों के निर्वाह एवं खर्च के लिए राजेन्द्र

प्रसाद के सुपुर्द कर दी गई।

राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रचार एवं प्रसार के लिए राजेन्द्र प्रसाद ने हिन्दी में "देश" और अंग्रेजी में "सर्चलाइट" का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बड़ा बल मिला। पूरे प्रान्त में थाना कांग्रेस कमेटियां और पंचायतें कायम हुईं। कांग्रेस के सदस्य बनाए गये। तिलक स्वराज्य फंड में रुपये जमा किए गये। चर्खे और खादी का काम बढ़ा। हरिजन सेवक संघ की स्थापना हुई। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया गया। बिहार चर्खा संघ की स्थापना हुई। बिहार में खादी का काम अधिक बढ़ा। सारे देश में बिहार खादी को प्रसिद्धि मिली। गांधीजी के रचनात्मक काम को राजेन्द्र प्रसाद ने अपने हाथ में लिया। रचनात्मक काम के लिए सार्वदेशिक संस्था बनी।

गांधीजी के इस रचनात्मक कार्यक्रम से देश में अच्छी जागृति आई। इससे स्वावलम्बी एवं निर्भय कार्यकर्त्ता तैयार हुए। राजेन्द्र प्रसाद ने गांधीजी के सारे रचनात्मक काम को बड़ा महत्व दिया। अहिंसा के मार्ग को अपनाने के लिए यह सुगम रास्ता बना। राजनीतिक क्रान्ति का ध्येय भी इसी को माना गया। रचनात्मक कार्यक्रम से समाज की आर्थिक स्थिति के सुधार और विकास का पूरा अवसर मिला। खादी को इसी रूप में उन्होंने अपनाया और उसका प्रचार किया। खादी ग्रामोद्योग के माध्यम से हर हाथ को काम देना, गांव की आवश्यकता गांव वाले ही पूरा करें इस लक्ष्य से बढ़ावा मिला। रचनात्मक काम के पीछे मात्र यही उद्देश्य था।

राजेन्द्र प्रसाद तिलक स्वराज्य फंड के लिए गांधीजी के साथ भ्रमण कर रहे थे। दोनों उड़ीसा पहुंचे। उस समय वहां अकाल पड़ा हुआ था। अकाल पीड़ितों की जो सहायता की जा सकती थी वह की गई। उस समय बिहार उड़ीसा एक ही प्रान्त था। उड़ीसा भ्रमण का जिक्र करते हुए राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा है: "उड़ीसा की ही किसी सभा में महात्माजी ने बहुत मार्के का भाषण किया था। उसका असर आज तक मेरे दिल पर है। सभा में किसी ने महात्माजी से प्रश्न किया कि आप अंग्रेजी शिक्षा के विरुद्ध क्यों हैं? अंग्रेजी शिक्षा ने ही तो राजा राममोहन राय, लोकमान्य तिलक, तथा आपको पैदा किया है? महात्माजी ने उत्तर में कहा कि मैं तो कुछ नहीं हूं, पर लोकमान्य तिलक जो भी हुए हैं, उससे कहीं अधिक बड़े हुए होते यदि उनको अंग्रेजी द्वारा शिक्षा का बोझ ढोना न पड़ा होता। राजाराममोहन राय और लोकमान्य तिलक — श्री शंकराचार्य, गुरु नानक, गुरु गोविन्द सिंह और तुलसी तथा कबीर के मुकाबले में क्या हैं? आज तो सफर के और प्रचार के इतने साधन मौजूद हैं। उन लोगों के समय में ऐसे कोई साधन नहीं थे। तो भी उन्होंने विचार की दुनिया में इतनी बड़ी क्रान्ति मचा दी थी।" इस सम्बंध में राजेन्द्र प्रसाद का विचार था कि: "अंग्रेजी जानना बुरा नहीं है। उसे हम में से बहुतों को जानना होगा। हम उसे सीखेंगे भी, पर वह शिक्षा का माध्यम और साधन नहीं रह सकती।"

राजेन्द्र प्रसाद सरल और सहज स्वभाव के थे। तुलसीदासजी ने सहज स्वभाव को इस

प्रकार समझाया — सहज सुभाव छुआछल नाहीं। कबीरदासजी की यह उक्ति भी उन पर सटीक बैठती है, सहज सहज सब कोई कहे, सह जन चीन्हे कोई, जिन्ह सहज विषया तजी, सहज कहै जो सोई। जिस किसी को उनके निकट बैठने का सुअवसर मिला है, वही उनके अकृत्रिम व्यवहार से मुग्ध हुआ है। सहज भाव बड़ी कठिन साधना से प्राप्त होता है। सीधी लकीर खींचना बड़ा टेढ़ा काम है। जो सहज मानव होगा वही सहज भाषा बोल और लिख सकता है। जिनका दिमाग उलझा होता है वे उलझी भाषा बोलते और लिखते हैं। राजेन्द्र प्रसाद की भाषा से उनकी आन्तरिक सच्चाई प्रकट होती है। जिन्होंने राजेन्द्र प्रसाद को बोलते सुना है वे ही अनुभव कर सकते है कि सहज भाषा क्या हो सकती है। उनके भाषणों में उनका हृदय प्रतिबिंबित होता था। वह प्रयास और अभ्यास वाली भाषा नहीं होती थी। अस्तित्व की सच्चाई की सहज अभिव्यक्ति होती थी। हिन्दी के लिए यह गर्व और गौरव की बात है कि उसमें राजेन्द्र प्रसाद की अनुकरणीय शैली और आन्तरिक सच्चाई की सहज सरल अभिव्यक्ति हुई है।

राजेन्द्र प्रसाद ने हिन्दी सेवा का काम 1918 में प्रारम्भ किया। इन्दौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन गांधीजी के सभापतित्व मे हुआ। राजेन्द्र प्रसाद उसमें सम्मिलित हुए। वहीं से वह हिन्दी प्रचार के काम को देखने मद्रास गये। गांधीजी ने हिन्दी प्रचार के काम में अपने पुत्र देवदास को लगाया था। राजेन्द्र प्रसाद ने इस काम की महत्ता को भली भांति समझा। बिहार के दो-तीन हिन्दी कार्यकर्त्ताओं को मद्रास भेजा। वे लोग आजन्म मद्रास में हिन्दी सेवा के काम में लगे रहे। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का दो वार्षिक अधिवेशन राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में हुआ। राष्ट्रीय एकता के लिए भाषा का प्रश्न देश के सामने उभरता रहा है। खासकर हिन्दी और उर्दू को लेकर काफी विवाद रहा है। इस सम्बंध में राजेन्द्र प्रसाद के विचार स्पष्ट रहे हैं। राष्ट्रभाषा परिषद् और हिन्दुस्तानी प्रचार सभा वर्धा तथा हिन्दी प्रचारिणी सभा मद्रास के भी अध्यक्ष पदों से उनके स्पष्ट विचार आये हैं। वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं: "मैंने अपने भाषण का यही विषय रखा और हिन्दी साहित्य सेवियों के विचारार्थ यह प्रश्न उपस्थित किया। मेरा कहना था कि हिन्दी को उदार, सहज और सरल बनाना है। उसमें विदेशी शब्दों के ग्रहण करने मे कोई हिचकिचाहट नहीं है। अर्थात् चाहे वे फारसी या अरबी के हों या अंग्रेजी के पर जो शब्द हिन्दी मे आवे उन्हें हिन्दी बना लेना चाहिए। अर्थात् वह हिन्दी व्याकरण के अनुशासन के अधीन होकर रह जाएं। मेरा यही विचार बराबर रहा है। उस समय से आज तक इस बात पर बहुत बहस छिड़ी है। पर मैं अपने विचार मे अधिक दृढ़ होता गया हूं। केवल इन तीन भाषाओं के ही शब्द नहीं लेने पड़ेंगे, हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में ग्रामीण शब्दों को भी अपना लेना पड़ेगा। जो प्रान्तीय भाषाएं हैं उनकी शब्दावली से भी बहुत शब्द लेने पड़ेंगे।" इस प्रकार हिन्दी प्रचार करने वाली सभी संस्थाओं के वे वर्चस्व थे। राष्ट्रभाषा के साथ-साथ गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों को राजेन्द्र प्रसाद ने बखूबी निभाया। रचनात्मक काम के पीछे वे तब लगे जब कांग्रेस में "परिवर्तनवादी" और "अपरिवर्तनवादी" दो दल हो गये।

राजेन्द्र प्रसाद उस भारत के मूर्तिमान स्वरूप थे जो भारत गांधी का बनाया हुआ है। राजेन्द्र प्रसाद ने गांधी धर्म को अपने भीतर, पूर्णरूप से आत्मसात कर लिया था। गांधीजी के जीवन काल में और उसके बाद भी गांधी का भारत कहने लगा था कि. गांधी की समस्त रचनात्मक प्रवृतियों का उत्तराधिकार राजेन्द्र प्रसाद के पास जाने वाला है। गांधीजी ने अपने अवसान के पूर्व वर्धा में भूदान सहित सभी प्रकार के रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं का एक सम्मेलन बुलाया था। विचार था कि इसका संचालन राजेन्द्र प्रसाद करें। राजेन्द्र प्रसाद वर्धा पहुंच गये थे। गांधीजी वहां दूसरे ही दिन जाने वाले थे कि एक दिन पूर्व गांधी का शरीर पार्थिव शरीर में बदल गया। परिस्थितियां बदल गई। इस कारण यह उत्तराधिकार राजेन्द्र प्रसाद के पास बा ज़ाप्ता नहीं पहुंचा। वे संविधान सभा के अध्यक्ष हुए। फिर देश ने उन्हे अपना राष्ट्रपति बनाकर राष्ट्रपति भवन में बिठा दिया। तब भी यह सत्य है कि गांधी विचार के सभी रचनात्मक कार्यकर्त्ता राजेन्द्र प्रसाद को अपना नैतिक संरक्षक मानते थे। हरिजन सेवक संघ — हरिजनों के बीच काम करने वाली अन्य स्वयं सेवी संस्थाएं, खादी ग्रामोद्योग के कार्यकर्ता राजेन्द्र प्रसाद पर अपना नैसर्गिक अधिकार मानते थे। भूदान आन्दोलन अथवा संत विनोबा उन्हे अपना पूज्य सलाहकार मानते थे। राष्ट्रीय एकता, विशेषतः हिन्दु-मुस्लिम एकता के लिए काम करने वाले लोग राजेन्द्र प्रसाद को अपना प्रेरणा स्रोत समझते थे।

"जो मनुष्य अपनी जरूरता को बेहद बढ़ाता जाता है, वह अपने ऊपर बंधनों को कड़ा और मजबूत करता जाता है। सच्ची स्वतंत्रता के लिए अपनी जरूरतों को कम करना चाहिए।

10. बिहार भूकम्प

15 जनवरी सन् 1934 को बिहार के प्रलयंकारी भूकम्प को भुलाया नहीं जा सकता। हजारों घर बर्बाद हुए। लाखों बेघर-बार हुए। करोड़ों का नुकसान हुआ। राजेन्द्र प्रसाद बीमारी की अवस्था में पटना अस्पताल में कैद थे। वे बिहार के गांधी कहलाते थे। बिहार सरकार के सामने प्रलंयकारी भूकम्प का दृश्य था। भूकम्प पीड़ितों की सेवा, एवं उजड़े बिहार को बसाना एक काम था। उसी समय बिहारी जनता का दुख दूर करने राजेन्द्र प्रसाद जेल के अस्पताल से मुक्त किए गए।

जेल से छूटने के बाद राजेन्द्र प्रसाद ने भूकम्प पीड़ितों की सेवा और उजड़े बिहार को बसाने का काम जिस उत्साह से किया, उसके उदाहरण में लॉर्ड माउंटबेटन की वह बात दोहरानी पड़ती है: (भारत विभाजन के समय दंगा और पाकिस्तान से भारत की ओर भागने वाले लोगों का दृश्य करुणामय था — उस समय लूट, मार-काट के समय माउंटबेटन ने गांधी मिशन के सम्बंध में कहा था) ''एक तरफ भारत सरकार के हजारों-हजार फौजी जवान दंगे को शान्त करने के लिए जी-जान से लगे थे, उसका असर वह नहीं हुआ, जितना अकेले गांधीजी की हिम्मत का एवं उनके नंगे पांव और फकीरी वेष में दंगाइयों के बीच निःशंका घूमने का हुआ।'' बिहार भूकम्प के समय अकेले राजेन्द्र प्रसाद ने जितना काम किया उतना साधन-सम्पन्न सरकारी अमला भी नहीं कर सके।

अस्पताल से छूटते ही राजेन्द्र प्रसाद भूकम्प प्रभावित क्षेत्र का दृश्य देखकर द्रवित हो गये। बीमार शरीर से रोग कैसे और कब कहां निकल गया इसका उनको पता भी नहीं चला। वे भूकम्प से जूझते बिहार को बचाने तथा तबाही में पड़े लोगों को राहत पहुंचाने में जी-जान से लग गये।

बिहार के गवर्नर ने राजेन्द्र प्रसाद को बुलाया। कहा, इस समय सरकारी सहायता कोष से जो काम होगा, उसमें वे मदद करें। फिर पूछा, उनकी अपील पर लोगों से क्या मिलगा?

क्या उससे तहस-नहस बिहार की जनता की वह मदद कर सकेंगे?

पिछले कई साल से कांग्रेस के कार्यकर्त्ता और नेता जेल में थे। फिर भी राजेन्द्र प्रसाद ने जवाब में गवर्नर से निवेदन किया कि, इस मामले में सरकार जो कुछ भी करेगी, उससे हम लोगों का विरोध तो होगा ही नहीं, पर कुछ ऐसे भी समाजसेवी दाता होंगे जो सरकार को पैसे ने देकर चाहेंगे कि गैर सरकारी संस्थाएं भी सेवा का काम करें। जनता को उससे अधिक राहत और संतोष मिलेगा। हम लोग हर संकट के समय जनता की सेवा करते आए हैं। जनता कुछ हमसे आशा रखती है। सरकार से हमारा मुकाबला नहीं है। जो कुछ भी लोग हमको देंगे उन्हीं का अच्छे से अच्छा इस्तेमाल करके हम संतोष कर लेंगे। गवर्नर के सामने इतनी बात रख दी।

जेल से छूटे कुछ मित्रों के साथ बैठकर "बिहार सैंट्रल रिलीफ कमेटी" के नाम से एक संस्था की स्थापना की गई। राजेन्द्र प्रसाद उसके प्रधान (अध्यक्ष) हुए और जयप्रकाश नारायण सचिव। अनुग्रह नारायण सिंह जेल से जब छूटे तब उन्होंने सचिव का भार सम्भाल लिया। कुछ ही दिनों में यह सिद्ध हो गया कि जनता को सरकारी मदद से अधिक लाभकारी एवं स्वाभिमानी सहायता गैर सरकारी संस्थाओं के माध्यम से मिलती है। राजेन्द्र प्रसाद की अपील पर केन्द्रीय सहायता कोष में रुपये तथा अन्य मानवोपयोगी सामान आने शुरू हो गए। सरकार की तरफ से भी रिलीफ फंड के लिए अपील निकली। दोनों फंडों में जो धन और सामान मिलते, उनका ब्यौरा प्रतिदिन प्रकाशित किया जाता। कुछ ही दिनों के बाद सरकारी फंड बहुत पीछे छूट गया। बिहार सैंट्रल रिलीफ फंड में आई रकम और सामान कहीं आगे बढ़ गया।

राजेन्द्र प्रसाद ने सभी दाताओं की नामावली छपवा दी। वह प्राय: चार सौ पन्ने की पुस्तक बन गई। इस सम्बंध में राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्म-कथा मे लिखा है, "सार्वजनिक काम में रुपये-पैसे के मामले में सफाई निहायत जरूरी है। सार्वजनिक फंड में ईमानदारी की कीमत सच्ची सेवा से कम नहीं है।"

बिहार के भूकम्प में लाखों-लाख मकान गिर गये। लाखों-लाख कुएं बालू से भर गये थे। बहुतेरे ऐसे गांव थे जहां कुओं में पानी था ही नहीं, यहां तक कि कहीं-कहीं गहरे गड्ढे इस तरह बालू से भर गये थे कि वहां यह पता नहीं चलता था कि, यहां कभी गड्ढा रहा है। पानी का घोर संकट था। कहीं-कहीं छोटी-मोटी नदियों की धारा और डगर बालू से बिलकुल भर गये थे। यह किसी एक गांव या इलाके की बात नहीं थी, गंगा के उत्तर में प्राय: सभी जिलों में सैकड़ों मील की लम्बाई और प्राय: 40-45 मील की चौड़ाई में थोड़ी या बहुत करीब-करीब एक-सी हालत थी। वैसी जगहों में पानी पहुंचाना, स्रोतों से, अन्य स्थानों से बालू हटाना, ये सारे असाधारण काम ईमानदारी और रात-दिन के परिश्रम से ही किए जा सकते थे, और किए गए। इनकी मदद में गांधीजी, जवाहरलालजी, सरदार पटेल, कुमारप्पा, कृपलानी, हर्डीकर, श्रीमती सोफिया सोमजी, कुमारी मुरिमल लेस्टर, कुमारी आगाथा हैरिशन, दीनबन्धु एंडरूज ... प्रभृति ने पूरी शक्ति और ताल-मेल के साथ काम किया। इस काम के पीछे जो संगठन

बना वह भी असाधारण था। देश-विदेश से जो धन आया और सामान मिले उनके पाई-पाई का हिसाब रखा गया। इन सब कामों के पीछे राजेन्द्र प्रसांद में कर्मठता, ईमानदारी और कार्यकर्ता के साथ मिलकर काम करने की अद्भुत शक्ति थी। क्रमबद्ध योजना से सहायता और उनको फिर काम में लगाने की जो व्यवस्था हुई, उससे उजड़े बिहार को ऐसा बना दिया गया कि जिसको देखकर यह कहा गया कि अभिशाप भी कभी-कभी आशीर्वाद बनकर आता है। वही बिहार के लिए हुआ। विध्वंस को निर्माण में बदल दिया गया। इस काम के साथ राजेन्द्र प्रसाद की प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा इतनी बढ़ी कि देशवासियों ने इनके नाम के साथ "देशरत्न" जोड़ दिया। इसी बात को लेकर जयप्रकाश नारायण ने एक जगह लिखा है, "गांधीजी ने अपने दरबार में कई रत्न इकट्ठे किए थे, उनमें देशरत्न राजेन्द्र बाबू ही कहे गये।"

राजेन्द्र बाबू की संगठन-शक्ति और सेवापरायणता और लोकप्रियता को समझ कर ही टूटी हुई कांग्रेस की अव्यवस्था को फिर से संगठित करने के लिए गांधीजी सहित कांग्रेस कार्यसमिति ने एकमत से फैसला किया कि बम्बई में होने वाले 48वें कांग्रेस अधिवेशन का अध्यक्ष पद राजेन्द्र प्रसाद को दिया जाए। कांग्रेस का अध्यक्ष पद स्वीकार करने का प्रस्ताव राजेन्द्र प्रसाद के पास पहुंचा। इसे स्वीकार करने में उन्होंने कह दिया कि अभी मेरे लिए यह भार उठाना सम्भव नहीं है। बात गांधीजी के पास पहुंची। गांधीजी ने राजेन्द्र प्रसाद को अध्यक्ष पद स्वीकार करने को कहा तथा इंकार करने का कारण पूछा। राजेन्द्र प्रसाद ने कहा, आपका आदेश शिरोधार्य है, किन्तु मेरे सामने एक नैतिकता का प्रश्न उठ खड़ा हुआ है, जिसकी वजह से मुझे अध्यक्ष पद स्वीकार करना ठीक नहीं लग रहा है। नैतिकता के प्रश्न ने गांधीजी को चौंका दिया। पूछा, ऐसी क्या बाता है? वह तो मुझे दिखाई नहीं पड़ती। राजेन्द्र प्रसाद मौन हो गये और फिर रुक कर बोले, कांग्रेस अध्यक्ष वैसे व्यक्ति को नहीं होना चाहिए जो कर्जदार हो। इतना सुनते ही गांधीजी अवाक् हो गये। थोड़ा शान्त होकर पूछा, क्या बात है? मुझे साफ-साफ बताओ।

राजेन्द्र प्रसाद ने कहा, भाई की मृत्यु कुछ ही दिन पूर्व हुई है। अभी मेरे सामने घर-गृहस्थी, आमद और देनदारी का हिसाब आया है। पता चला है कि हम पर दो लाख का कर्ज है। वह अब मुझे चुकाना है। गांधीजी ने सेठ जमनालाल बजाज को बुलाया। राजेन्द्र प्रसाद से जानकारी मिली थी उससे सेठजी को अवगत कराया और पूछा, क्या इस भार से राजेन्द्र प्रसाद को मुक्त कराया जा सकता है? कांग्रेस अध्यक्ष पद स्वीकार करने में इनके सामने यह नैतिकता का प्रश्न आ खड़ा हुआ है। गांधीजी का आदेश पाकर सेठजी ने अपने मैनेजर को जीरादेई भेज कर पूरी जानकारी प्राप्त की। मालूम हुआ कि जमींदारी तथा जमीन यदि रेहन कर दी जाए, तथा कुछ सामान बिक जाएं तो कर्ज आसानी से चुकाया जा सकता है। अन्ततोगत्वा कर्ज चुकाने का प्रबन्ध किया गया। तब जाकर राजेन्द्र प्रसाद ने कांग्रेस का अध्यक्ष पद स्वीकार किया। नैतिकता की रक्षा के लिए सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के लिए यह साधारण उदाहरण है, काश, इस प्रकार के तपोपूत नेताओं की पीढ़ी कुछ और समय तक जीवित रहती तो देश

का भविष्य कुछ और होता। तब नेता का पद का त्याग तपस्या का पद था, लाभ का और सुविधा भोगने का नहीं।

"देश में चारित्रिक ह्रास बहुत हुआ है। इसके कारण बहुत हैं। इसके रोकने का प्रयत्न केवल भाषणों द्वारा व्यर्थ होगा। कुछ स्पष्ट कार्यरूप से हो जैसा पूज्य गांधीजी किया करते थे, तो कुछ सफलता की आशा हो सकती है। क्योंकि दूसरों पर शब्दों से अधिक क्रियाओं का प्रभाव पड़ता है।"

— *राजेन्द्र प्रसाद*

11. कांग्रेस अध्यक्ष

राजेन्द्र प्रसाद कांग्रेस के तीन बार अध्यक्ष हुए। कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी उन पर थी। वे पहली बार सन् 1934 ई० में कांग्रेस अध्यक्ष हुए — उस समय पिछले चार साल से कांग्रेस के सभी कार्यकर्त्ता और नेता जेल में थे। कांग्रेस के भवन, आश्रम-दफ़्र गैर कानूनी संस्था के रूप में जप्त कर लिए गए थे। जप्त की अवस्था में सभी तहस-नहस हो गए थे। एक-एक करके सबको सम्भाला गया। आबाद किया गया। दफ़्रों को चालू किया गया। थाना संगठनों से लेकर प्रान्तीय, फिर अखिल भारतीय संगठन की व्यवस्था की गई। इन सारी व्यवस्था के पीछे राजेन्द्र बाबू की संगठन शक्ति का अद्भुत परिचय मिला।

अब तक अखिल भारतीय कांग्रेस का स्थाई दफ़्र नहीं था। कांग्रेस अध्यक्ष की सुविधा के अनुसार प्रधान कार्यालय रखा जाता था। राजेन्द्र बाबू के कांग्रेस अध्यक्ष काल में पंडित मोतीलाल नेहरू ने अपना आलीशान भवन कांग्रेस को समर्पित कर दिया। उसी का नाम स्वराज्य भवन पड़ा। वहीं स्वराज्य भवन कांग्रेस का स्थाई दफ़्र बना।

आचार्य जे.बी. कृपलानी महामंत्री मनोनीत हुए। सन् 1934 के अक्तूबर मास में कांग्रेस का अधिवेशन बम्बई में हुआ। यह कांग्रेस का पचासवां साल था। अतः कांग्रेस की स्वर्ण जयंती मनाने का निश्चय किया गया। स्वर्ण-जयन्ती का मुख्य महोत्सव बम्बई में हुआ। सारे देश में बड़ी धूम-धाम और हर्षोल्लास के साथ कांग्रेस की स्वर्ण जयन्ती मनाई गई। कांग्रेस की लोकप्रियता देखकर ब्रिटिश सरकार दंग रह गई। उसने सोचा कि भारतीय जनता को स्वराज्य के नाम पर कुछ-न-कुछ अवश्य दे देना चाहिए, अन्यथा सारे देश में भारी असंतोष भड़क सकता है। इसलिए भारत में उसने एक कानून लागू किया जो गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट 1935 के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अनुसार देश में आम चुनाव कराए गए और जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों को प्रांतीय शासन सौंप दिया गया। फलस्वरूप बम्बई, मद्रास, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, असम, बिहार, उत्तर प्रदेश और पश्चिम सीमाप्रान्त में कांग्रेस सरकारें बनीं। प्रान्तों में वायसराय के प्रतिनिधि गवर्नर होते थे। उनको प्रान्तीय शासन में विशेष अधिकार था। जिलों के आई.सी.एस. अफसर सीधे गवर्नर के मातहत समझे जाते थे। फिर भी यह

स्वतंत्रता की ओर बढ़ा हुआ एक कदम था।

अपने इस अध्यक्ष-काल में राजेन्द्र प्रसाद ने दो उल्लेखनीय कार्य किए। एक, उन्होंने कांग्रेस का इतिहास लिखवा कर उसे हिन्दी, मराठी, कन्नड़, तेलुगु और उर्दू में एक साथ प्रकाशित कराया। यह इतिहास मूल रूप में अंग्रेजी में डा. पट्टाभि सितारमैया द्वारा लिखा गया था। पांडुलिपि का सम्पादन स्वयं राजेन्द्र बाबू ने किया था। दूसरा काम इससे भी बड़े महत्व का था। वह था देशी राज्यों में प्रजा मंडल की स्थापना। फलस्वरूप जयपुर, भरतपुर, जोधपुर, उदयपुर पटियाला, बीकानेर मैसूर, हैदराबाद, जम्मू-कश्मीर आदि बड़े-बड़े राज्यों के अलावा अन्य देशी रियासतों में भी "देशी राज प्रजा मंडल" बना और उन्होंने वहां की जनता में प्रजातंत्र एवं स्वतंत्रता की भावना जागृत की। इससे कांग्रेस सच्चे मायनों में सारे देश की एक बहुत बड़ी प्रतिनिधि संस्था बन गई। इससे कांग्रेस को बल मिला।

कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने सारे देश का दौरा ियिा। प्रायः सभी प्रान्तों में प्रांतीय सम्मेलन कराए गए। इससे कांग्रेस की स्थिति काफी मजबूत हुई। इसी बीच बलूचिस्तान के क्वेटा नगर में भयंकर भूकम्प हुआ। राजेन्द्र प्रसाद ने तुरन्त सहायता समिति का गठन कर भूकम्प पीड़ितों की सेवा में रात-दिन एक कर दिया। आप सोचेंगे कि शरीर से रुग्ण होते हुए भी राजेन्द्र प्रसाद इतना काम कैसे कर सके। इसका उत्तर स्पष्ट है। एक तो वे तन-मन से देश को समर्पित थे। देश सेवा ही उनका काम था, देश-सेवा ही उनका व्यसन। दूसरे, भगवती सरस्वती ने उन्हें विशद बुद्धि दी थी, जिससे उनके सोचने का तरीका इतना स्पष्ट था कि संदेह और उहापोह की गुंजाइश ही नहीं रह जाती थी। वे कभी किंकर्त्तव्य विमूढ़ता के शिकार नहीं हुए। विमल बुद्धि ने उनमें उचित निर्णय लेने की अद्भुत क्षमता प्रदान कर दी थी। तीसरे, वे हर बात पर गौर करते और अपने सहयोगियों से भी परामर्श करते। चौथे, वे हर काम को योजनाबद्ध तरीके से करते थे और काम का बंटवारा कराकर सभी को सहभागी बना लेते थे, जिससे हर व्यक्ति उसे अपना ही काम समझता था। सूझ-बूझ, सलाह-मशविरा और बंटवारे से किया गया हर काम पूरा होता था। सबसे बढ़कर बात तो यह है कि उन्हें गांधी जैसे गुरु का आशीर्वाद, मार्ग-दर्शन और अगाध स्नेह प्राप्त था। यही कारण था कि वे अस्वस्थ रहते हुए भी इतना काम कर सकते थे। इनमें कांग्रेस के इतिहास-लेखन का, उसको प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद कराने का और सभी भाषा-संस्करणों को प्रकाशित कराने का काम अपने में इतना बड़ा और श्रम-साध्य था कि कोई बड़े-से-बड़ा प्रकाशक भी उसका भार अपने ऊपर लेने में संकोच करता।

राजेन्द्र प्रसाद के बाद कांग्रेस-अध्यक्ष हुए पंडित जवाहरलाल नेहरु। इनके बाद हरिपुरा कांग्रेस फरवरी 1937 में सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। जब वे दूसरी बार त्रिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्ष चुने गए तब चोटी के कांग्रेसी नेताओं के बीच सैद्धान्तिक संघर्ष चल रहा था। कांग्रेस के अन्दर इस संघर्ष के बीच मिला-जुला कर कार्यसमिति का गठन करना सुभाष बाबू को पसन्द नहीं था। इस कशमकश के बीच सन् 1939 के 28 अप्रैल

को कलकत्ते में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाई गई। वहां वह अपने नेतृत्व का खुलासा चाहते थे। वह नहीं हो सका। फलस्वरूप उन्होंने इस्तीफा दे दिया। वह एक विशेष स्थिति में हटे। सुभाष बाबू असाधारण व्यक्तित्व के नेता थे। किन्तु कांग्रेस में उनका बहुमत नहीं होने पर भी अधिक अल्पमत में भी नहीं थे। ऐसी स्थिति में किसी को कांग्रेस का अध्यक्ष स्वीकार करना कठिन था। किसी के लिए भी वह चुनौती की स्थिति थी। उस समय अधिक लोकप्रिय नेता को ही अध्यक्ष भार उठाना था। दूसरी बार अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने राजेन्द्र प्रसाद को अध्यक्ष पद सम्भालने को कहा। यह दुःसह दायित्व स्वीकार करना था। पहले तो वे इंकार करते रहे। फिर गांधीजी का आदेश आया — उस आदेश को वे टाल नहीं सके। इस तरह राजेन्द्र प्रसाद दूसरी बार कांग्रेस के अध्यक्ष बने।

द्वितीय महायुद्ध यूरोप के माथे पर मंडरा रहा था। भारत धर्म-संकट की स्थिति में था। युद्ध हमारे माथे पर ही मढ़ा जा रहा था। कांग्रेस इससे छुटकारा पाने के लिए रास्ता खोज रही थी। ऐसे समय में राजेन्द्र प्रसाद को कांग्रेज की बागडोर थामनी पड़ी। राजेन्द्र प्रसाद का स्वाभाविक सौजन्य, तथा समस्या को समझने की अद्‌भुत क्षमता वाद-विवाद में आवेश की ओर प्रवाहित होने वाले व्यक्तियों को शान्त होने के लिए बाध्य कर देती थी। उनके मधुर वचन और स्वभाव, क्रोध को पास फटकने नहीं देते थे — यह उनकी अमूल्य निधि थी, यही इनके दायित्व को सफल बनाने में सहायक सिद्ध हुई।

इन्हीं दिनों यूरोप में इंग्लैंड और जर्मनी के बीच भयंकर युद्ध छिड़ गया। ब्रिटिश सरकार चाहती थी कि इस युद्ध में भारत अंग्रेजों की सहायता करे। भारत पर तो उन्हीं का शासन था। इस पर कांग्रेस ने आपत्ति की। गांधीजी ने स्पष्ट कर दिया कि भारत को युद्ध में घसीटना अनैतिक है। स्वतंत्र होने के बाद ही भारत इस बात का फैसला कर सकता है कि इस युद्ध में इंग्लैंड की मदद की जाए या नहीं। कांग्रेस का अध्यक्ष होने के नाते राजेन्द्र प्रसाद प्रतिमाह कांग्रेस समिति की बैठक बुलाकर परिस्थितियों का मूल्यांकन कर समिति के निर्णय से सरकार को अवगत कराते रहे। कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता की मांग रखी तो वायसराय ने राजेन्द्र प्रसाद को समझौते के लिए आमंत्रित कर कहा कि युद्ध में इंगलैंड की मदद की जाए। जहां तक पूर्ण स्वतंत्रता की मांग का प्रश्न है, ब्रिटिश सरकार युद्ध के बाद उस पर विचार करेगी। राजेन्द्र प्रसाद ने वायसराय का प्रस्ताव ठुकरा दिया और प्रान्तों के कांग्रेस मंत्रिमंडलों को इस्तीफा देने का आदेश दिया।

अंग्रेजों ने तलवार के बल पर भारत पर शासन करने के लिए कमर कस ली थी। इस विषम परिस्थिति में कांग्रेस ने गांधीजी से राह दिखाने की प्रार्थना की। गांधीजी ने युद्ध और हिंसा के खिलाफ व्यक्तिगत सत्याग्रह की योजना बनाई जिसमें सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह में अटूट विश्वास रखने वाले सत्याग्रहियों को ही सम्मिलित किया गया। ऐसे प्रथम सत्याग्रही थे विनोबा भावे। यह व्यक्तिगत सत्याग्रह युद्ध और हिंसा के साथ-साथ ब्रिटिश सम्राज्यवाद का भारत जैसे निर्दोष देश को युद्ध में घसीटने के खिलाफ भारतीय जनभावना का द्योतक था।

कांग्रेस सहित गांधीजी इसके प्रतीक थे। एक के बाद एक युद्ध के खिलाफ सत्याग्रही आते गये। सरकार उन्हें गिरफ़ार करके जेलों में भेजती रही। अन्त में उन्हें सरकार ने मुक्त कर अपने सौजन्य का ढिंढोरा भी पीटा, पर समस्या अभी जैसे की तैसे थी। यह सन् 1940-41 की बात है।

इस अवधि में एक ओर कांग्रेस का आन्दोलन और रचनात्मक कार्य साथ-साथ चलते रहे। दूसरी ओर ब्रिटिश शासन का दमन-चक्र और भारतीय जनता को चुग्गा डालकर लुभाने के उपाय भी साथ-साथ चलते रहे। अंग्रेज बहुत चालाक थे। ब्रिटिश सरकार ने सन् 1942 के शुरु में एक सुयोग्य ब्रिटिश राजनीतिज्ञ को भारतीय नेताओं से बातचीत के लिए भेजा। वह था सर स्टेफोर्ड क्रिप्स। क्रिप्स ने भारत को अनौपचारिक स्वायत्तता की जो पेशकश की वह केवल खोखली ही नहीं बल्कि भारत की एकता को चोट पहुंचाने वाली थी। इसी पर गांधीजी को कहना पड़ा — जब आपको यही देना था तब आप आए ही क्यों? यह मिशन बिना किसी ठोस बात पर पहुंचे खाली हाथ वापस लौट गया।

सन् 1941 से 1945 ई० तक देश के हजारों स्वतंत्रता सेनानी जेल में बन्द कर दिए गए। रामगढ़ के बाद कांग्रेस का बाज़ाप्ता अधिवेशन मेरठ में ही हुआ। मेरठ कांग्रेस के अध्यक्ष आचार्य जे.बी. कृपलानी हुए। वह कुछ ही दिनों तक अध्यक्ष रहे। उस समय अन्तरिम सरकार बन गई थी। कृपलानीजी का सरकार और कांग्रेस संस्था के बीच प्रधानता के मामले पर मतभेद हुआ। इसी मतभेद के कारण 17 नवम्बर 1947 को कृपलानीजी ने इस्तीफा दे दिया। उनकी जगह पर किनको अध्यक्ष बनाया जाए — जो इस मतभेद को पाट सके और विवाद से ऊपर उठकर कांग्रेस की पतवार को सही दिशा दे सके। यह प्रश्न सामने आया। गांधीजी सहित सभी नेताओं का एक मत हुआ कि इस पद के लिए राजेन्द्र प्रसाद से कहा जाए। इस प्रस्ताव को लेकर स्वयं नेहरूजी और सरदार वल्लभभाई पटेल राजेन्द्र बाबू से मिले। उनसे कांग्रेस अध्यक्ष पद स्वीकार करने का आग्रह किया।

राजेन्द्र बाबू ने कहा — ''कांग्रेस का अध्यक्ष पद स्वीकार किया जा सकता है जब मुझे इन दो पदों से मुक्त कर दिया जाए। इस पर नेहरूजी ने कहा — संविधान की अध्यक्षता से मुक्त होना तो संभव नहीं है। कृषि खाद्य मंत्री पद के लिए ज्यों ही उपयुक्त व्यक्ति मिलेंगे आप उससे मुक्त हो जायेंगे। थोड़े ही दिनों के बाद जयरामदास दौलतराम बिहार के राज्यपाल पद से मुक्त हुए। उनको राजेन्द्र बाबू की जगह पर कृषि एवं खाद्य मंत्री बनाया गया।

राजेन्द्र बाबू तीसरी बार कांग्रेस के अध्यक्ष बने। वे संविधान सभा के अध्यक्ष बने रहे। इसके अतिरिक्त वे राजपुरा विकास परिषद और फरीदाबाद विकास परिषद के भी अध्यक्ष थे।

''हमें दो हाथ लेने के लिए नहीं, देने के लिए भी मिले हैं।''

राजेन्द्र प्रसाद

12. अन्तिम जेल-जीवन

गांधीजी भारत को विदेशी राज से छुटकारा दिलाने के लिए छपटपटा रहे थे। वे संसार के बड़े-बड़े राष्ट्रनायकों के नाम पत्रों द्वारा अपनी व्याकुलता भेजने लगे। भारत की मुक्ति के लिए जेहाद बोलने से पूर्व गांधीजी ने अपनी बात सबों तक पहुंचा दी। गांधीजी ने अंग्रेजों से भारत छोड़ने के लिए साफ शब्दों में कह दिया। कांग्रेस से अपनी जिन्दगी की आखिरी लड़ाई के लिए तैयार रहने को कहा। देश को नारा दिया — करो या मरो (डू और डाई) और अंग्रेजों से कहा "भारत छोड़ो" (क्विट इंडिया)।

गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस देश की आजादी के लिए यह आखिरी कदम उठा चुकी थी। ब्रिटिश सरकार को गांधीजी की दृढ़ता में सन्देह नहीं था। इसलिए भारत में शासन बनाए रखने के लिए उन्होंने गांधीजी समेत कांग्रेस के नेताओं को बम्बई में एक साथ गिरफ़ार कर महाराष्ट्र के अहमदनगर किला में नजरबन्द कर दिया। गांधीजी को पूना के आगाखां महल में नजरबन्द रखा गया। उनके साथ ही उनकी पत्नी "बा" (कस्तूरबा गांधी) और सचिव महादेव भाई भी थे। राजेन्द्र बाबू पटना में बीमार थे। वे बीमार अवस्था में ही गिरफ़ार किए गए। पटना जेल में नजरबन्द रखे गए।

सन् 1942 में जब कांग्रेस के प्राय: सभी नेता गिरफ़ार कर लिए गए तब देश में एक देशव्यापी आन्दोलन चला जो "सन् 1942 की अगस्त क्रान्ति" के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें भारत की जनता सामूहिक रूप से अंग्रेजी शासन के विरोध में खड़ी हो गई। जगह-जगह सरकारी कार्यालयों पर कब्जा किया गया। रेलों की पटरियां उखाड़ दी गई। अधिकारियों पर, थानों पर, शस्त्रगारों पर, स्वयंसेवकों पर पहरा बैठ गया। जिलों में समानांतर प्रशासन स्थापित हुआ।

पूना के आगाखां महल में कैद महादेव भाई देसाई और बाद में कस्तूरबा गांधी का निधन हो गया। राजेन्द्र बाबू पटना जेल में कैद थे। इन दुख:द समाचारों को सुनकर वे व्यथित हो उठे। महादेव भाई देसाई और "बा" की क्षति गांधीजी की व्यक्तिगत क्षति थी। इससे भी बढ़कर राष्ट्रीय क्षति थी। इसे केवल विधि विधान मानकर सब्र करना किसी भी संवेदनशील व्यक्ति के लिए संभव न था। राजेन्द्र बाबू तो इन दोनों दिवंगत आत्माओं से निकटत: जुड़े हुए थे।

जेल-जीवन में राजेन्द्र बाबू के मुख्य चार काम देखने को मिले। बीमारी की अवस्था में शान्त पड़ा रहना, दूसरों से सुनना, अच्छे होते ही चर्खा चलाना एवं पुस्तक लिखना। समय पर तैयार होना तथा प्रतिदिन नियमित साथियों के साथ प्रार्थना करना — अपने इन्हीं कार्यों में उन्हें जुट जाना होता था। कभी-कभी सप्ताह, पन्द्रह दिनों के लिए कुछ राजनैतिक कैदी बाकीपुर जेल में रखे जाते। उनसे बातचीत करते। उनकी सुनते अपनी कहते। वे एक महीने तक प्रतिदिन एक घंटा गांधीजी पर बोलते रहे। उसी के फलस्वरूप "बापू के कदमों में" पुस्तक तैयार हो गई।

कुछ ही दिनों बाद बाहर से खबरें आने लगीं। अखबार मिलने लगे। बंगाल दुर्भिक्ष की दुर्दशा में बुरी तरह फंस गया था। अन्न के बगैर लोग वहां मर रहे थे। हालत यहां तक पहुंच गई थी कि, सड़कों पर लोग मरने लगे। राजेन्द्र बाबू का कोमल हृदय ऐसी खबर पढ़कर रो पड़ा। हम लोग उनकी दशा को देखकर उनको अखबार पढ़ने से रोक भी नहीं सकते थे। वे भी अखबार पढ़ने से अपने को रोक नहीं सकते थे। पढ़ते और रोते, कहते, बंगाल की ऐसी हालत पर हम लोग लाचार हो गये हैं। वहां के लोगों पर न जाने क्या-क्या गुजरती होगी। खबरें भी तो खुलकर नहीं छपती हैं। हम लोगों ने सोचा इनका मन लगाने के लिए कुछ किया जाए। मैंने कहा — अपनी आत्मकथा पूरी कर लीजिए। वे राजी हो गये। वे लिखाते थे, मैं लिखता था फिर "इंडिया डिवाइडेड" लिखने लग गये। चार घंटे चर्खा चला लेते थे। उसी समय वे लिखते भी थे। कुछ पढ़कर सुनाया भी जाता था — वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, महाभारत, उपनिषद, श्रीमद्भगवत, चैतन्यचरित, पुराणों की कथा आदि ग्रंथ पढ़ गये। सुन गये। हम चार लोग तो उनके साथ स्थायी रूप से थे।

खान अब्दुल गफ्फार खां का नाम सुना होगा। वह सीमान्त गांधी कहलाते हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी सेनानी माने जाते हैं। वह पाकिस्तान में हैं। ब्रिटिश सरकार भारत को दो टुकड़े में बांट गई। एक का नाम भारत — और दूसरे टुकड़े का नाम पाकिस्तान पड़ा। दोनों 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र हुए। सीमान्त गांधी पाकिस्तान में रह गये। उनको भारत का बंटवारा पसन्द नहीं था। फिर भी ब्रिटिश सरकार ने अपनी घोषणा से कानूनन भारत और पाकिस्तान को अलग-अलग राष्ट्र के रूप में स्वतंत्र किया।

आजादी की लड़ाई के समय सीमान्त गांधी हजारीबाग जेल में कैद थे। उस समय राजेन्द्र बाबू भी उसी जेल में कैद थे। यह 1932-33 की बात है। काफी समय तक दोनों एक साथ कैद रहे। सीमान्त गांधी ने एक जगह राजेन्द्र बाबू के सम्बंध में बोलते हुए कहा — "मानव के जीवन में चरित्र की एक कसौटी जेल-जीवन भी है। राजेन्द्र प्रसादजी को खूब जानता हूं और यह भी कह सकता हूं कि, जो लोग कैद में मुसीबतों और तकलीफों की जगहों में इकट्ठे होते हैं, उनको मौका मिलता है कि वे एक-दूसरे को पहचानें। मुझे इसका फक्र है कि, बाबू राजेन्द्र प्रसाद के साथ जेल में काफी मुद्दत से रहा हूं। मैं उनकी आदतों से वाकिफ हूं और मैं यह कह सकता हूं कि, सबसे बड़ी तारीफ उनकी है और जिसकी हर हिन्दुस्तानी को जरूरत है,

वह यह है कि इनके दिल में भेदभाव नहीं है। मैं यह दावे से कह सकता हूं कि बाबू राजेन्द्र प्रसाद का दिल सबके लिए एक है। वे हर तरह के भेदभाव से ऊपर हैं। जेल में ही पता चला कि राजेन्द्र प्रसाद धर्मात्मा और सांस्कृतिक पुरुष हैं। राजनीति का नम्बर उसके बाद ही आता है। मानवीयता इनमें कूट-कूट कर इतने सहज रूप से भरी हुई है कि, व्यवहार में उसे लाने के लिए उन्हें कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। राजेन्द्र प्रसाद के व्यक्तित्व में दार्शनिक की-सी तीव्र बुद्धि और बालक की-सी नितान्त सरलता समन्वित है। गांधीजी के सहयोगियों में से और किसी में भी यह विलक्षण समन्वय नहीं मिलता।''

जयप्रकाश बाबू हजारीबाग जेल में कैद थे। यह 1942 की बात है। वे वहां से अपने तीन साथियों के साथ जेल की दीवार फांद निकल भागे। जयप्रकाश बाबू के साथ भागने वालों में बिहार के क्रान्तिकारी नेता योगेन्द्र शुक्ल का नाम प्रमुख था। वह कुछ दिनों बाद पकड़ लिए गए। गिरफ़ारी के बाद उनको बांकीपुर जेल के एक सेल में रखा गया। राजेन्द्र बाबू पहले से ही उस जेल में थे। एक दिन शुक्लजी को राजेन्द्र बाबू से मिलने की इजाजत मिली। मिलने पर राजेन्द्र बाबू से कहा कि हम लोग हजारीबाग जेल से कैसे भागे यह किस्सा आपको विस्तारपूर्वक सुनाना चाहता हूं। राजेन्द्र बाबू ने कहा — अच्छा होता अभी उसे अपने तक रहने देते। तुम पर मुकदमा चलने वाला है। मुझसे कोई तुम्हारी बात पूछ बैठे — मेरे मुंह से कोई बात निकल जाए। वह ठीक नहीं होगी। और कोई होता तो यह कहानी कान पसार कर सुनता। राजेन्द्र बाबू का केवल जीभ पर ही सयंम नहीं था, सत्य की रक्षा के प्रति उनकी सजगता थी, कानून के प्रति उनकी श्रद्धा थी। सच तो यह है कि सत्य, अहिंसा और सादगी के प्रति ऐसा समर्पित और सजग व्यक्ति गांधीजी के बाद और कोई नहीं मिलेगा। तब भारत के एक आदर्श, निष्पक्ष और जागरुक राष्ट्रपति का निर्माण हो रहा था, इसमें दो मत नहीं।

''यदि कोई हमारा साधन ठीक नहीं है तो हमारा साध्य भी ठीक नहीं उतरेगा।''

राजेन्द्र प्रसाद

13. स्वराज्य की ओर

15 जून 1945 में प्राय: सभी कांग्रेसी नेताओं को रिहा कर दिया गया। राजेन्द्र प्रसाद भी पटना जेल से रिहा हुए। भारत में अंग्रेजी राज कई कारणों से कमजोर हो रहा था। ऐसी हालत में भारत पर अंग्रेजी हुकूमत के अंतिम दिन नजर आ रहे थे। भारतीय नेताओं की मर्जी के बगैर भारत पर राज करना उनके लिए संभव नहीं था। अंग्रेज भारत को छोड़ कर जाने या रहने — दोनों के बीच का रास्ता खोजने लगे। ''फूट डालो और राज करो'' वाली नीति का इस्तेमाल किया। भारत को कई टुकड़ों में मान कर, विभिन्न मत-मतान्तर के नेताओं से अलग-अलग बात करने का फैसला लिया। पहले दौर की बातचीत शुरु की। सम्प्रदाय एवं धर्म विशेष के नेताओं के बीच खाई खोद दी। इसने भारत में विषाक्त वातावरण पैदा किया। ब्रिटिश सरकार को यह सिद्ध करना था कि भारतवासी एक साथ मिलकर नहीं रह सकते। इसलिए कोई एक दल भारत का शासन भी नहीं सम्भाल सकता।

गांधीजी ब्रिटिश सरकार की चाल को अच्छी तरह समझ गये थे। ब्रिटिश सरकार से पहले दौर की बातचीत में ही कह दिया कि, अंग्रेज अपना शासन शीघ्र हटा लें। गांधीजी स्वराज्य को सत्य का जामा पहना चुके थे। उन्होंने साफ शब्दों में कह दिया कि, अंग्रेज भारत को इसी रूप में छोड़कर चला जाए। गांधीजी की दृढ़ता को अंग्रेज भांप गये।

इंग्लैंड की तत्कालीन सरकार ने भारत को आजादी सौंपने का सोच लिया। परन्तु इसके पीछे कूटनीतिक चाल काम कर रही थी। वह नीति भारत की विशाल शक्ति को कमजोर करने की थी।

गांधीजी सन् 1944 में ही रिहा कर दिए गए थे। भारतीय नेताओं की रिहाई के समय गांधीजी पूना में स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। वहीं सभी नेता उनसे मिलने और मंत्रणा के लिए गए। वहीं खबर मिली कि, वायसराय ने शिमला में भारतीय नेताओं को मंत्रणा के लिए आमंत्रित किया है। उस समय लार्ड वैवेल भारत के गवर्नर जनरल एवं वायसराय थे। उनसे बात बनी नहीं। थोड़े समय के बाद ब्रिटिश सरकार ने राजघराने के एक अनुभवी व्यक्ति को वायसराय बनाकर भारत भेजा। वह था लार्ड माउंटबेटन। ब्रिटिश राज की तरफ से तीन

अधिकारी सर स्टैफर्ड क्रिप्स, पैथिक लारेंस और अलेग्जेंडर भी भारतीय नेताओं से मिलने आए। इनसे कई पहलुओं पर प्रत्येक दृष्टिकोण से बातें हुईं। इस बातचीत में गांधीजी, कांग्रेस की ओर से जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, मौलाना अबुल कलाम आजाद, राजेन्द्र प्रसाद प्रभृति थे। मुस्लिम लीग की तरफ से मोहम्मद अली जिन्ना एवं लियाकत अली खां प्रभृति थे। सिख की ओर से मास्टर तारा सिंह थे। हरिजन नेता के रूप में अम्बेडकर थे।

ब्रिटिश सरकार भारत को कई टुकड़ों में बंटा मानती थी। उसके दृष्टिकोण से ब्रिटिश भारत का एक, दूसरा देशी रजवाड़ों का, तीसरा मुसलमानों और चौथा फुटकर अल्पसंख्यकों का, इस प्रकार वह भारत को अलग-अलग हिस्सों में बांट कर जाना चाहती थी। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर उसकी दो योजनाएं प्रकाशित हुई थीं।

एक 16 मई 1946 को जिसे दीर्घकालीन योजना कहा गया था। इस योजना में संविधान सभा की एक रूपरेखा थी। घोषणा में योजना के अनुसार भारत को तीन-चार हिस्सों में बांट कर ही संविधान सभा बनती थी। उस घोषणा में इसकी प्रक्रिया भी बता दी गई थी। उस प्रक्रिया के अनुसार एक स्थायी अध्यक्ष चुनना था। अन्य पदाधिकारियों के लिए एक मंत्रणा समिति कायम करनी थी। इसके बाद प्रान्तीय प्रतिनिधित्व को तीन खंडों में बांटने की व्यवस्था थी। प्रत्येक खंड द्वारा अलग-अलग बैठ कर अपने लिए संविधान की रूपरेखा तैयार करने की बात थी। पहले खंड के समूह में — मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रान्त, बिहार, मध्य प्रदेश, और उड़ीसा थे। दूसरे समूह में पंजाब, उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त और सिन्ध थे। तीसरे समूह में थे बंगाल और आसाम। इसके अतिरिक्त देशी रजवाड़ों को स्वतंत्र छोड़ दिया था — चाहे जिस समूह में वे बैठें।

ब्रिटिश सरकार की दूसरी योजना 16 जून 1946 को प्रकाशित हुई। यह योजना केन्द्र में अन्तरिम सरकार बनाने से सम्बंध रखती थी। इन दोनों योजनाओं के पीछे मुस्लिम लीग की धोखा-धड़ी चलती रही। मुस्लिम लीग के नेता जिला कांग्रेस के अन्य नेताओं के साथ मिलकर काम करना नहीं चाहते थे। इसलिए दीर्घ कालीन योजना को लीग ने नामंजूर कर दिया। इस योजना में भारत का संविधान बनाने की बात थी। कांग्रेस ने दोनों योजनाओं को स्वीकार कर लिया।

16 जून 1946 को योजना स्वीकार करने के बाद जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में 2 दिसम्बर 1946 को केन्द्र में अन्तरिम सरकार बनी। इसमें बारह मंत्री हुए। राजेन्द्र प्रसाद कृषि एवं खाद्य मंत्री बने।

14. संविधान सभा की अध्यक्षता

ब्रिटिश सरकार द्वारा 16 मई 1946 ई० की घोषणा के अनुसार दीर्घ कालीन योजना भी कांग्रेस की ओर से स्वीकार की गई थी। उसके अुनसार 9 दिसम्बर 1946 को भारत की संविधान सभा (लोकसभा भवन के केन्द्रीय हाल में) बैठी। यह संविधान सभा कई बन्धनों के साथ बनी थी। इस सभा के स्थायी अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद चुने गये। राजेन्द्र प्रसाद ही क्यों? ऐसा लगता है कि कांग्रेस संगठन में जब-जब कोई समस्या उपस्थित हुई तब-तब सभी की नजरें उसका ठीक हल खोजने के लिए राजेन्द्र बाबू पर आ टिकती थीं।

विषम परिस्थितियों और साम्प्रदायिक समस्याओं के बीच संविधान सभा के काम को पूरा कराने की प्रबुद्धता राजेन्द्र प्रसाद में क्या थी, इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए गोपाल स्वामी अयंगार ने राजेन्द्र प्रसाद के अध्यक्ष चुने जाने पर कहा — "डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद का निर्वाचन उस असीम विश्वास का प्रतीक है जो इनमें विधान परिषद (संविधान सभा) का ही क्या समस्त देश का है। सभापति चुनकर वस्तुतः हमें अपना अभिनन्दन करना है कि, उन्होंने संविधान सभा के स्थायी सभापति का आसन स्वीकार किया।

डा. राजेन्द्र प्रसादजी एक दु:सह दायित्व स्वीकार कर रहे हैं। उनका जीवन देश सेवा के लिए आत्मसमर्पण का जीवन रहा है। अनुपम त्याग और तपस्या से इनका जीवन पवित्र हो चुका है। मेरे लिए यह आवश्यक है कि मैं उनके महान पांडित्य, गम्भीर विद्वता तथा मनुष्य और स्थिति के विस्तृत ज्ञान पर प्रकाश डालूं। इन गुणों ने ही उन्हें इस महान कार्य के योग्य बनाया है। इसके निर्वाह में उन्हें जिन कठिनाइयों, जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ेगा, उसके समाधान के लिए उन्हें इन गुणों का ही सहारा लेना होगा। गत कई दिनों से ही मैं उनके सम्पर्क में आया हूं और उनसे मेरा साक्षात हुआ है। अब मुझे दु:ख होता है कि, और पहले से तथा अधिक घनिष्ठता पूर्वक उन्हें जानने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला। मैं इनके सम्बंध में सुन चुका था। पर गत दिनों के अनन्तर जबसे साक्षात हुआ है और उन्हें जानने का अवसर मिला है, मैंने यह अनुभव किया है कि अपनी तीव्र बुद्धि और गम्भीर ज्ञान के कारण ही वह देशवासियों का आदर-सम्मान पाते हैं और पाते रहेंगे। इनकी सर्वोपरि विशेषता जिनके कारण

वे समस्त देशवासियों के बिना सम्प्रदाय वर्ग भेद के स्नेह और सम्मान के भाजन सदा रहेंगे, वह है इनके मानव-गुण, इनका स्वाभाविक सौजन्य, समस्या को समझने की इनकी पद्धति, जो सदा वाद-विवाद में आवेश की ओर प्रवाहित होने वाले व्यक्तियों को शान्त होने के लिए बाध्य कर देती है और इनके मधुर वचन, जो इनके उत्तरदायित्व को सफल बनाने में बड़े सहायक होंगे जिसे इन्होंने स्वीकार किया है। इनके सभापति निर्वाचित हो जाने पर यह कहा जा सकता है कि संविधान सभा ने अपने भाग्य-निर्णायक जीवन का श्री-गणेश किया है।''

हां, राजेन्द्र प्रसाद ही ऐसे व्यक्ति थे जो एक ओर तो कानून में निष्णात थे, दूसरी ओर लोगों के मन में उनके प्रति सम्मान था। इससे भी बढ़कर बात यह थी कि, संविधान को निर्दोष और कालजयी बनाने के लिए जिस असाधारण दूरदर्शिता की दरकार थी वह राजेन्द्र बाबू में मौजूद थी। तब कौन वकील नेता कांग्रेस में न था? राजाजी थे, पटेल थे, स्वयं नेहरूजी थे। अनेक दिग्गज विधानवेत्ता और नामी-गिरामी वकील बैरिस्टर भी इस संविधान सभा में चुनकर आये थे। पर इस गौरवशाली पद के लिए तो राजेन्द्र बाबू ही सबसे बढ़कर थे। इस पद पर उनका चुनाव इस बात का सबूत था कि भारत के राजनैतिक क्षेत्र में उनका अपना खास स्थान था। यह इस बात का भी सबूत था कि देश के नेताओं को और देश की जनता को राजेन्द्र बाबू की असाधारण योग्यता में पूरा-पूरा विश्वास था। क्यों न हो विश्वास? आखिर ''देशरत्न'' जो ठहरे! वह अजातशत्रु भी कहे जाते थे।

ब्रिटिश सरकार की ओर से यह सभा कई बन्धनों से जकड़ी हुई थी। किन्तु राजेन्द्र प्रसाद ने पहले दिन ही अपने अध्यक्षीय भाषण में इस संविधान सभा को सार्वभौम सत्ता सम्पन्न संविधान सभा घोषित कर दिया और कहा — ''इस संविधान सभा का काम बहुत मुश्किल है। इसके सामने तरह तरह के सवाल दरपेश होंगे। भारतीय संविधान सभा का यह जलसा बड़े ही कठिन समय में हो रहा है। हम यह मानते हैं कि इस तरह की दिक्कतें और (देशों के) संविधान सभाओं के सामने जहां-जहां वह हुई हैं रही हैं।

कोई कारण नहीं कि हमारी यह संविधान सभा भी बावजूद इन कठिनाइयों के जो हमारे सामने हैं, अपने काम को उसी खूबी के साथ उसी सफलता के साथ अंजाम न दें। चाहिए इसमें सच्चाई, चाहिए इसमें एक दूसरे के ख्याल के लिए अपने दिल में इज्जत और हृदयता, चाहिए हमको वह ताकत कि, हम एक दूसरे की बातों को सिर्फ समझ ही नहीं सकें, बल्कि जहां तक हो सके उनके दिलों में घुसकर उनको खुद अनुभव कर सकें। महसूस कर सकें। और इस तरह से काम कर सकें कि जिसमें कोई यह न समझे कि उसकी उपेक्षा की गई या उसकी बातों का ध्यान नहीं दिया गया। अगर ऐसा हो, अगर हम में स्वयं ऐसी शक्ति आ जाए तो मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि बावजूद इन कठिनाइयों के और सब मुश्किलों के हम अपने आप में पूरी तरह से कामयाब होकर रहेंगे।

''मैं जानता हूं कि इस परिषद की पैदाइश तरह तरह के प्रतिबन्धों के साथ हुई है। बहुत से प्रतिबन्ध तो ऐसे हैं कि मुमकिन है, इन्हें अपनी कार्यवाही के सिलसिले में हमें याद भी रखना

पड़े। मगर साथ ही मैं यह भी जानता हूं कि इस विधान परिषद को पूरा अधिकार इस बात का है कि अपनी कार्यवाही जिस तरीके से चाहे करे। इसके अन्दर वह जो कुछ करना चाहे करे। किसी भी बाहरी ताकत को अख्तियार नहीं है कि इसकी कार्यवाही में वह कुछ भी हस्तक्षेप कर सके। इतना ही नहीं, मैं यह भी मानता हूं कि जो पाबन्दियां इसको जन्म के साथ मिली है उनको तोड़ देने और उनको खतम कर देने का अख्तियार भी इस असैम्बली को है। आपकी कोशिश यही होनी चाहिए कि हम इन बंधनों से बाहर निकल कर एक ऐसा विधान, एक ऐसा कायदा अपने देश के लिए तैयार करें, जिससे इस देश के हरेक स्त्री-पुरुष को यह मालूम हो जाए कि, चाहे वह किसी भी मजहब का क्यों न हो, किसी भी प्रान्त का क्यों न हो, किसी भी विचार का क्यों न हो, उसके सभी अधिकार सदा सब तरह से सुरक्षित हैं। अगर हमारी असैम्बली में इस तरह का प्रयत्न किया गया और उसमें हमें सफलता मिली, तो मैं यह भी मानता हूं कि संसार के इतिहास में यह एक इतना बड़ा काम होगा, जिसके मुकाबले की दूसरी मिसालें कम मिल सकती हैं ...।" "मैं सबको दिल से धन्यवाद देता हूं और यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि आइन्दा की कार्यवाही में जो कुछ शक्ति ईश्वर ने मुझे दी है और जो कुछ थोड़ी बुद्धि मुझे मिली है और जो कुछ संसार का थोड़ा बहुत तजुर्बा मुझे हासिल हुआ है, वह सब आपकी सेवा में अर्पित रहेगा। मैं आशा करता हूं कि, आप अपनी ओर से जो कुछ मदद हमें दे सकते हैं, देते रहेंगे।"

संविधान-निर्माण के दौरान अध्यक्ष की हैसियत से राजेन्द्र प्रसाद ने कई महत्वपूर्ण घोषणाएं कीं। वे सभी ऐतिहासिक और राष्ट्र की थाती के रूप में संग्रहणीय हैं।

15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत सरकार को सत्ता सौंपी गई। यह सत्ता प्रभुसत्ता सम्पन्न भारतीय संविधान परिषद के अध्यक्ष (डा. राजेन्द्र प्रसाद) के हाथों में हस्तांतरित हुई। यह अवसर भारत के राजनैतिक इतिहास में अद्वितीय रहा। राजेन्द्र प्रसाद का भारत के प्रथम राष्ट्रपति होने से भी अधिक महत्वपूर्ण उनका संविधान सभा का अध्यक्ष होना था। राजेन्द्र बाबू ने अपने जीवन के जिस किसी क्षेत्र में प्रवेश किया वे सर्वप्रथम आये। उन्होंने सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। राजेन्द्र बाबू में भारत का एक अद्भुत व्यक्तित्व छिपा हुआ था। वह भारत के प्रतीक थे। भारत को जब सत्ता हस्तांतरित हुई उसका दृश्य इस प्रकार है:—

15 अगस्त 1947 की अर्ध रात्रि के ठीक 12 बजे अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने प्रस्ताव रखते हुए कहा कि — वायसराय को इस बात की सूचना दी जानी चाहिए कि —

1. भारतीय संविधान सभा ने भारत का शासनाधिकार ग्रहण कर लिया है।
2. भारतीय संविधान सभा ने इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया है कि 15 अगस्त 1947 से लार्ड माउंटबेटन वायसराय न रह कर, भारत के केवल गवर्नर जनरल हों, और
3. यह संदेश (नियुक्ति) अध्यक्ष तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा लार्ड माउंटबेटन को पहुंचाया जाए।

(हर्ष ध्वनि)

इतने बड़े देश का, जिसमें कई जातियों, धर्मों और भाषाओं के लोग बसते हों — जो कई वर्गों में बंटे हों और जहां एक समूह का दूसरे समूह से टकराव हो — ऐसे देश का संविधान बनाना कोई हंसी-खेल न था। यह बड़ा ही कठिन और महत्व का काम था। प्रजातंत्र, सामाजिक समानता, धर्म-निर्पेक्षता, सबको समान न्याय आदि मुद्दों या अन्य कई मुद्दों की रक्षा करते हुए, सभी वर्गों के हितों का ध्यान रखते हुए एवं प्रतिनिधि सदस्यों की उत्तेजना को ठंडा कर उनकी भावनाओं का आदर करते हुए संविधान निर्माण का काम आगे बढ़ा और इतनी तेजी से बढ़ा कि संविधान सभा का काम 11 दिसम्बर 1946 को आरम्भ हुआ, और साल दर साल आगे बढ़ता-बढ़ता 24 जनवरी 1950 को पूरा हो गया।

15. भारत के प्रथम राष्ट्रपति

भारत का संविधान 24 जनवरी 1950 को पूर्ण रूप से तैयार और पास हो गया। इसको तुरन्त लागू करना आवश्यक समझा गया। इसके पीछे 26 जनवरी की हमारी स्वतंत्रता की ऐतिहासिक भावना थी। संविधान के अनुसार ही भारत को स्वतंत्र गणतंत्र घोषित करना था। गणतंत्र भारत का एक राष्ट्रपति चुनना था।

संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति के निर्वाचन की व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अनुसार राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल में प्रत्येक राज्य की विधान सभा और केन्द्रीय संसद के दोनों सदनों के सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन में मतदाता होते हैं।

भारत का अपना संविधान 24 जनवरी 1950 को तैयार हो गया। इस संविधान के अनुसार बालिग मताधिकार के द्वारा राज्यों के विधान मंडलों और केन्द्र में लोकसभा का चुनाव होना था। इसके लिए मतदाता सूची तैयार करनी थी। संविधान के अनुसार चुनाव की व्यवस्था के लिए चुनाव आयोग की नियुक्ति होनी थी। यह सब नये संविधान के अनुसार राष्ट्रपति के द्वारा किया जाना था। फिर सवाल था कि राष्ट्रपति का चुनाव कैसे हो जब कि राष्ट्रपति को चुनने वाले निर्वाचक मंडल का गठन ही नहीं है। विचार करने के बाद निश्चय हुआ कि, भारत की संविधान सभा, जो अपने आप में सार्वभौम शक्ति-सम्पन्न संस्था भी है, इसमें प्रत्येक राज्य के विधान मंडल के सदस्यों में से दस लाख की आबादी पर एक सदस्य चुनकर आये। इस तरह पूरे देश के प्रत्येक दस लाख पर एक सदस्य जो चुनकर संविधान सभा में आये वही एक ऐसे राष्ट्रपति को चुने जो तत्कालीन व्यवस्था के अनुसार अस्थायी राष्ट्रपति हो। यह एक विशेष घटना थी। इसके लिए संविधान सभा द्वारा विशेष व्यवस्था का प्रावधान करना पड़ा। इस व्यवस्था और प्रस्ताव के अनुसार 24 जनवरी को ही संविधान सभा द्वारा सर्वसम्मति से राजेन्द्र प्रसाद सर्वप्रथम राष्ट्रपति चुने गये। राष्ट्रपति ने संविधान के अन्तर्गत उन सारी व्यवस्थाओं को पूरा कराने और बालिग मताधिकार द्वारा प्रजातांत्रिक पद्धति के अनुसार प्रत्येक राज्य के विधान मंडल और केन्द्र के दोनों सदनों के गठन की व्यवस्था की।

26 जनवरी 1950 को ही हम पूर्ण स्वतंत्र हुए। उस दिन भारतीय संविधान सभा द्वारा स्वीकृत सार्वभौम संप्रभुता सम्पन्न गणतंत्र की स्थापना हुई। राजेन्द्र प्रसाद प्रथम राष्ट्रपति हुए।

शताब्दियों के विदेशी शासन तथा दासता के बाद भारत की स्वाधीनता विश्व इतिहास में स्मरणीय है। इसके लिए सर्वशक्तिमान परमात्मा को धन्यवाद देना है, जिसने यह शुभ दिन दिखलाया। ऐसे पुण्य अवसर की प्राप्ति के लिए राष्ट्रपति महात्मा गांधी का भी सदा स्मरण रखना है। उन्होंने हमें और संसार को अपना सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह जैसा अमोघ शस्त्र प्रदान किया। उन्होंने ही हमें स्वतंत्रता के पथ पर आगे बढ़ाया। इस अवसर के लिए उन अनेकानेक नर-नारियों को भी स्मरण करना है जिन्होंने अपने त्याग और बलिदान से स्वतंत्रता प्राप्ति तथा भारत में सम्प्रभुता सम्पन्न प्रजातांत्रिक गणराज्य की स्थापना संभव की।

सन् 1920 से 1950 तक, पिछले तीस साल की अवधि को भारतीय इतिहास का "गांधी युग" कह सकते हैं। इतिहास में यह युग अविस्मरणीय रहेगा। इसी अवधि में प्राचीन भारत के गर्भ से नवीन भारत का जन्म हुआ। इसी अवधि में ऐसी घटनाएं घटीं, जो भारतीय इतिहास के हजारों वर्षों में नहीं घटी थीं। पहली बात यह है कि इस समय के पूर्व भारत नामक भूखण्ड कभी एक शासक के अधीन नहीं था। सुदृढ़ सांस्कृतिक एकता के बावजूद भी देश प्रशासनिक दृष्टि से एक नहीं था। अशोक ने देश के प्रमुख खंडों को एक सत्ता के अधीन कर लिया था। किन्तु वह भी कलिंग पर रुक गया था। और, एक प्रकार से दक्षिण उसके प्रशासन से बाहर रहा। अशोक के उपरान्त पचास वर्षों के भीतर ही मौर्य साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। विभिन्न प्रदेश अपने-अपने अलग पथों पर आगे-पीछे होते रहे। लगभग पन्द्रह सौ वर्षों के बाद मुगलों ने सारे देश को अपने प्रशासन के अधीन करने की भरसक चेष्टा की। किन्तु, वे इस प्रयत्न में बुरी तरह असफल रहे। केवल अंग्रेज ही सम्पूर्ण देश को इंग्लैंड की सत्ता के अधीन कर सके। पर वे भी समस्त देश में एक प्रशासन लागू करने में सफल नहीं हुए। जिसे हम ब्रिटिश भारत कहते थे — उसमें तो उन्होंने कानून का राज्य लागू कर दिया, पर तथाकथित देशी-रियासतों में व्यक्ति (राजा) ही कानून था। केवल 1950 में आकर सम्पूर्ण भारत स्वतंत्र गणराज्य बना। सारा देश एक भारतीय प्रशासन के अधीन हो गया। सार्वभौम संप्रभुत्ता सम्पन्न भारत का एक राष्ट्रपति हुआ। इसी घटना के माध्यम से पाश्चात्य प्रणाली के प्रजातंत्र की स्थापना हुई जो भारतवर्ष के इतिहास में पहले अज्ञात थी। परन्तु अब तो यह एक विशाल गणतंत्र, जनसंख्या के लिहाज से विश्व का सबसे बड़ा प्रजातंत्र पद्धतिपूर्ण गणतंत्र बन गया है।

हमारा संविधान सर्वोपरि है। इसकी प्रस्तावना में कहा गया है कि, हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए इस संविधान को अंगीकृत कर अधिनियमित और आत्मसमर्पित करते हैं। इसका उद्देश्य धर्मनिरपेक्ष प्रजातंत्र और समाजवादी समाज की स्थापना करना है। ऐसे संविधान के प्रति हमें निष्ठावान रहना है। भारत की गौरववृद्धि के लिए यह अति आवश्यक है।

राजेन्द्र प्रसाद ने राष्ट्रपति पद की शपथ लेने के बाद दो प्रमुख बातें कहीं — एक, "हमारे लम्बे और घटनापूर्ण इतिहास में यह प्रथम अवसर है जब उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक और पश्चिम में काठियावाड़ और कच्छ से लेकर पूर्व में काकीनाड़ा और

उत्तर-पूर्व में कामरूप व अरूणाचल तक एक विशाल देश का संविधान और एक संघ राज्य के छत्राधीन हुआ है। इसमें सम्पूर्ण देश के करोड़ों नर-नारियों के कल्याण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया गया है। दूसरी बात, हमारे गणराज्य का उद्देश्य है अपने सभी नागरिकों को बिना किसी वर्ण अथवा वर्ग-भेद के न्याय, स्वतंत्रता और समता प्राप्त कराना तथा इसके विशाल प्रदेशों में बसने वाले तथा भिन्न-भिन्न धर्मों को मानने वाले भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलने वाले और भिन्न-भिन्न आचार-विचार वाले लोगों में भाईचारे की अभिवृद्धि करना। इन दो बातों का हमें सदा ध्यान रखना है। अधिकार की चर्चा के साथ अपने कर्तव्यपालन पर भी हमें दृढ़ रहना है।''

राजेन्द्र बाबू का बारह साल से भी अधिक का राष्ट्रपतित्व काल भारत के इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय है, जिसमें एक गौरवशाली पद की गरिमा की सुगंधि बसी हुई है। स्वाधीन भारत के उदीयमान गणराज्य की दृढ़ मत आधार-शिला प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद का निर्वाचन थी। 12 वर्ष तक राष्ट्रपति के पद पर आसीन रहकर जिन परम्पराओं और संवैधानिक परिपाटियों को राजेन्द्र प्रसाद ने जन्म दिया और पोषित किया वह भारतीय गणराज्य की स्थिरता के लिए सबसे बड़ा वरदान है। संसदीय प्रणाली और प्रजातंत्र पद्धति को हमारे प्रथम राष्ट्रपति के सर्वोपरि योगदान का प्रमुख कारण उनका अद्भुत व्यक्तित्व था। संयम, समन्वय सात्विकता, निराभिमान सौम्यता उनकी प्रकृति के अंग थे। मेरा यह मत है कि उनके उज्जवल, राजनीतिक या संवैधानिक दृष्टिकोण के कारण हमारे गणराज्य के वे वर्ष सबसे बड़े उत्कर्ष के थे। उनमें स्वाभाविक गरिमा थी।

भारतीय गणतंत्र — संसार में संख्या की दृष्टि से सबसे बड़े प्रजातंत्रात्मक गणतंत्र का राष्ट्रपति! संसार की सबसे प्राचीन संस्कृति के उत्तराधिकारी देश का राष्ट्रपति! वह भी प्रथम राष्ट्रपति! राष्ट्रपति भी कैसा — नीचे से ऊपर तक खद्दर का लिबास — गंजी, धोती, कुरता, कुरते के ऊपर बंडी, सिर पर तेल-हीन छोटे-छोटे बालों पर लापरवाही से पहनी गई गांधीजी के नाम से मशहूर ''गांधी टोपी'' — देहाती किसान जैसी कद्दावर काया, भेदती हुई चमकीली किन्तु विनम्र आंखें, गझिन मूंछें — बस कन्धे पर या हाथ में एक लाठी की कसर कि पूरा का पूरा देहाती ठाठ-बाट — ऐसे डा. राजेन्द्र प्रसाद नामधारी राष्ट्रपति ने निःसन्देह अपने वैभवशाली राष्ट्रपति भवन को, जो एक दिन पहले तक वायसराय भवन कहलाता था, चकित निगाहों से देखा। उन्होंने उस राष्ट्रपति भवन को, जिसमें वायसराय भवन की गंध रची-बसी थी, जो पश्चिम की संस्कृति का नमूना था, जिसमें मांस और शराब के दौर चलते थे और जिसके अन्दर बैठकर विदेशी शासकों ने भारत की आत्मा को कुचलने की और उसकी अकूत सम्पत्ति के दोहन की कुचक्रभरी योजनाएं बनाई होंगी — ऐसे भवन को सचमुच राष्ट्रपति भवन बनाने में कोई कसर बाकी न रखी। आज साज-सज्जा, कलाकृति, खान-पान आदि की दृष्टि से राष्ट्रपति भवन में जो भारतीयता की छाप है, उसका श्रेय राजेन्द्र प्रसाद को ही है।

यह भारत में गणतंत्रीय शासन का प्रारम्भिक काल था। अंग्रजों द्वारा भारत पर शासन

करने के लिए बनाए गए कानूनों के स्थान पर भारतीय संविधान को स्थापित करना, दासता की बू जिनसे आ रही थी, ऐसी परम्पराओं को प्रजातंत्री रूप देना, विश्व के अन्य देशों की राजनीति में नवोदित गणराज्य की साख कायम करना और चौकन्ने होकर उनकी मान-मर्यादा की रक्षा करना, केन्द्रीय तथा प्रांतीय मंत्रिमंडलों पर नजर रखना, उनके लिए आचार-संहिता बनाना — ऐसे अनेक काम प्रथम राष्ट्रपति की हैसियत से राजेन्द्र प्रसाद ने किए। तब के प्रधान मंत्रियों में सिरमौर पंडित जवाहरलाल नेहरु उनसे बात-बात पर सलाह-मशविरा करते। यदि गांधीजी ने नेहरु को जननेता बनाया तो राजेन्द्र प्रसाद ने उन्हें कुशल प्रधानमंत्री बनाया।

राजेन्द्र बाबू का तो स्वभाव ही था कि हर बात को सोच-समझ कर करते थे। इसी स्वभाव की वजह से राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के रिश्ते को उन्होंने बड़ी खूबसूरती से निभाया। वे दोनों एक-दूसरे के पूरक रहे — एक गम्भीर तो दूसरा भावुक, एक अंतर्मुखी तो दूसरा अतिद्वय — दोनों एक-दूसरे के प्रशंसक थे। एक-दूसरे का सम्मान करते थे।

राष्ट्रपति भवन में रहते हुए तथा सर्वोच्च पद पर आसीन होते हुए भी राजेन्द्र प्रसाद को कभी किसी प्रकार की गर्वानुभूति नहीं हुई। वे तो साक्षात विदेह थे। शरीर उनका राष्ट्रपति भवन में अवश्य था, पर उनकी आत्मा ने सादगी, विनम्रता, सौजन्य, निरभिमानिता, अपरिग्रह, निर्लोभ पर मैल नहीं बढ़ने दिया। राजेन्द्र बाबू जैसे थे, वैसे ही रहे। न ही उनके परिवार वालों ने उनके पद का दुरुपयोग कर उनकी धवल कीर्ति पर कोई धब्बा लगाया। 12 वर्ष पर्यंत राष्ट्रपति पद भार वहन कर उन्होंने उसे ऐसे ही त्याग दिया जैसे भगवान राम ने वनवास जाते समय अयोध्या के राजभवन को त्याग दिया था। राष्ट्रपति भवन से विदा होते समय उन्होंने कहा था कि, जैसे एक विद्यार्थी को छुट्टी मिलने की खुशी होती है, वैसी ही खुशी मुझे हो रही है। उनका यह कथन उनकी आत्मा से साक्षात करा देना वाला है।

राष्ट्रपति भवन में लोग उनसे निःसंकोच मिलते, लगता कि किसी साधारण किन्तु महामानव से मिल रहे हैं। उनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसी सादगी, ऐसा भोलापन, ऐसा अपनापन, ऐसी सहजता और खुलापन था कि उनसे मिलते हुए किसी को कोई झिझक नहीं होती थी। वे सबके थे, सब उनके थे।

यह भारत का सौभाग्य था कि उसे ऐसा राष्ट्रपति — प्रथम राष्ट्रपति मिला — विद्वान, निरभिमानी, कुशल प्रशासक और घोर हिन्दुस्तानी। राजेन्द्र प्रसाद सदा इस बात के लिए प्रयत्नशील रहे कि जाने या अनजाने कोई ऐसा काम न हो जाए जिससे सारे देश को हानि पहुंचे, जो राष्ट्रपति पद पर गलत परम्परा डाल दे, जिससे किसी को गलत प्रोत्साहन मिले और जिससे राष्ट्रपति पद की छवि धूमिल हो या लोग कहें कि यह तो कठपुतली और बेजान राष्ट्रपति था। उन्हें ''स्वान निद्रा'' प्राप्त थी, ''काग चेष्टा'' सिद्ध थी, ''बकोध्यानम'' का ऐसा अवधान प्राप्त था कि जिसे एक बार देख लेते उसे कभी नहीं भूलते, जो एक बार पढ़ लेते वह उन्हें सदा याद रहता जो एक बार कह या लिख देते उसमें संशय या अनिश्चितता की कोई गुंजाइश नहीं रहती।

ऐसे थे हमारे राजेन्द्र बाबू, भारत और भारतीयता के प्रतीक। दिल्ली के रामलीला मैदान

में तथा निधन के बाद नेहरूजी ने इन शब्दों के साथ राजेन्द्र बाबू के प्रति अपनी भावना व्यक्त की थी — "राजेन्द्र बाबू का और मेरा पैंतालीस वर्ष से साथ रहा। पहले तो हम आजादी की लड़ाई में साथ रहे, उसके बाद वह राष्ट्रपति बने और मैं उनका मंत्री रहा। इस लम्बे अर्से में मैंने उनको बहुत देखा और बहुत कुछ सीखा। हजारों तस्वीरें आज मेरे सामने से गुजर जाती हैं।

हल्के-हल्के इस युग के बड़े-बड़े नेता गुजरते चले गये, लेकिन खुशनसीबी यह थी कि वह सिलसिला टूटा नहीं और उसको जारी रखने में राजेन्द्र बाबू का बहुत बड़ा हाथ था। एक मामूली हैसियत से वह भारत के सबसे ऊंचे ओहदे पर पहुंचे, फिर भी उन्होंने अपना तर्ज नहीं बदला। हिन्दुस्तानियत उनमें सोलहों आने थी। व्यक्तित्व की महानता के साथ-साथ उनकी सरलता और नम्रता बराबर बनी रही। उन्होंने ऐसी मिसाल कायम की, जिससे भारत की शान और इज्जत बढ़ी। वह इस बात के आदर्श बनकर रहे कि भारत की भारतीयता को कायम रखना है और नई बातों को सीखना है। वास्तव में वह भारत के प्रतीक हो गये। आज का भारत भारत है और भारत ही रहेगा, वह किसी की नकल नहीं करेगा।

उनके राष्ट्रपति पद पर रहने के बारह वर्षों का जमाना भारत का अच्छा जमाना गिना जाएगा। इस जमाने में हमने जो कुछ किया, उनकी निगहबानी में किया और शान से किया। हम यदि गलती करते थे तो वह हमें सम्भालते थे। यह बारह साल का जमाना तो उनका जमाना समझा जाएगा। जो जिन्दा कौम होती है, वह जब मौका आता है तो कोई न कोई बुलन्द इन्सान पैदा कर देती है। राजेन्द्र बाबू ने अपना सिक्का इस जमाने पर जमाया और उससे हमारा सिर ऊंचा हुआ। हिन्दुस्तान की आजादी मजबूती से जमी। जब कि और देशों में, खासतौर से पड़ोसी देशों में, कितनी बार उलट-फेर हुई है, हिन्दुस्तान और मुल्कों के मुकाबले किसी कदर मजबूती से चला। उस पर चीन का हमला हुआ और उसने उसका मुकाबला किया, फिर भी किसी तरह की अदल-बदल नहीं हुई। यह उसी गांधी-युग की देन है, जिसने न सिर्फ आजादी और एकता की, बल्कि ऐसी परम्पराएं भी पैदा कीं, जिनसे आजादी की जड़ें बहुत गहराई से जम गईं। राजेन्द्र बाबू इस युग की बहुत मजबूत कड़ी थे।

उनकी मुद्रा और आंखें भुलाई नहीं जा सकतीं, क्योंकि उनसे सच्चाई झलकती थी। उनकी काबलियत, उनके दिल की सफाई और अपने मुल्क के लिए उनकी मुहब्बत ने उनके लिए हर भारतवासी के दिल में गहरी जगह पैदा कर दी।

16. अंतिम समय

राजेन्द्र बाबू 26 जनवरी 1950 ई. को प्रथम राष्ट्रपति पद के शपथ-ग्रहण के बाद वायसराय हाउस में गये थे। बाद में उसका नाम राष्ट्रपति भवन पड़ा। उन्होंने राष्ट्रपति भवन में बारह वर्ष तीन महीने सतरह दिन तक राष्ट्रपति पद की गरिमा को ऊंचा उठाया।

13 मई 1962 ई. को राष्ट्रपति भवन से विदा लेकर पटना के सदाकत आश्रम में आये। राष्ट्रपति पद से अवकाश ग्रहण करते समय उन्होंने कहा, यहां से जाते समय मुझे वैसी ही खुशी हो रही है, जैसी खुशी विद्यार्थी को स्कूल से छुट्टी के बाद घर जाने की होती है। राजेन्द्र बाबू उन्नासी वर्ष से कुछ अधिक के थे। उम्र के लिहाज से केवल शरीर से कमजोर हुए थे। दांत सभी मौजूद थे। सदा शाकाहारी रहे। किसी प्रकार की नशीली चीज, यहां तक कि तम्बाकू, जर्दा, पान नहीं खाते थे। भोजन में रोटी, भात, सब्जी के अतिरिक्त दूध बहुत पसन्द करते थे। बौद्धिक प्रखरता और विचार की दृढ़ता सदा बनी रही।

सदाकत आश्रम में जब कभी उनको शारीरिक कष्ट हो और डाक्टर देखने को आवें तब उनसे कहते थे — ''डाक्टर साहब, शरीर के सभे कल-पुर्जा घिस गइल बा, धीरे-धीरे सभे आपन काम करल बन्द करी, केतना के ठीक करब, जायं दीं-ऐसन शरीर से कौनो काम न लेने के ठहरल तब एकरा जाहीं के चाहीं।'' शरीर के प्रति ऐसी विदेहता के बावजूद उन्होंने सार्वजनिक काम के लिए समय देना नहीं छोड़ा। देहावसान के दिन 28 फरवरी 1963 ई. को पटना विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण देने का कार्यक्रम निश्चित कर दिया था। भाषण लिख चुके थे। छप गया था। उसी दिन संध्या को अचानक ज्वर आ गया। पटना विश्वविद्यालय नहीं जा सके। बिहार विधान सभा के तत्कालीन अध्यक्ष (स्पीकर) डा. लक्ष्मीनारायण सुधाशुंजी ने पटना विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में राजेन्द्र बाबू का लिखित दीक्षान्त भाषण पढ़कर सुनाया।

लेखक ने अब तक किसी दैहिक को इस तरह से देहत्याग करते नहीं देखा था। लेखक सिरहाने बैठे अपने हाथ पर राजेन्द्र बाबू का सिर रखे हुए था। पूज्य बाबू चैतन्य थे। उन्होंने कान पर जनेऊ चढ़ाने का इशारा किया। समझा गया पेशाब करना चाहते हैं। जनेऊ चढ़ा दिया। पेशाब का बर्तन लगा दिया। हटा देने का इशारा किया। शारीरिक कष्ट सहने की

अपूर्व क्षमता थी। वह किसी को अपना कष्ट बताकर दुखित या चिन्तित करना नहीं चाहते थे। बिलकुल शान्त थे। उसी समय बिहार के प्रसिद्ध कर्मकांडी ज्योतिष पं. विष्णुकान्त झा बुलाए गए। वह आकर खाट के पास मंत्रोच्चार के साथ गंगाजल छिड़क रहे थे। डा. टी.एन. बनर्जी, डा. रघुनाथ शरण और डा. रतनेश्वरी प्रसाद सिन्हा तीनों एक-दूसरे से सलाह-मशविरा करते निराश हो रहे थे। नब्ज की गति धीरे-धीरे घट रही थी। मेरा हाथ उनके सर के नीचे ही पड़ा था। एक बार "राम हो" बोले। रात का दस बज रहा था। गले में घड़घड़ाहट आई। दो-तीन हिचकियां हुईं। फिर बिल्कुल शान्त हो गये। डाक्टरों ने कहा, अब नहीं रहे। पूज्य बाबू के पैताने में अर्ध गोलाकार करके उनके छोटे लड़के धन्नू, बाबू, इनकी पत्नी कमलाजी, भतीजा जनार्दन बाबू की पत्नी चन्द्रमुखी देवी और इनके सभी बच्चे-बच्चियां तथा पांच-सात कर्मचारी खड़े थे। डाक्टरों की बात सुनते ही सभी रो पड़े। फिर उनके पार्थिव शरीर को खाट से उठाकर जमीन पर लिटा दिया गया। देहावसान की खबर पटना शहर, देश और विदेश में फैल गई। रात से ही उनके दर्शन के लिए लोगों का आना शुरु हो गया। दूसरे दिन दोपहर को राजकीय सम्मान के साथ पटना के बांस घाट पर उनका अंतिम संस्कार कर दिया। उनका नश्वर शरीर पंच-तत्व में मिल गया। किन्तु उनके सारे कार्य जीवित हैं और सदा जीवित रहेंगे। इन्हीं से प्रेरणा प्राप्त करके हम सब उनकी याद करते हैं।

"हम आपस में मिल-जुल कर रहें, सिर्फ अपने ही लोगों से नहीं बल्कि मनुष्य-मात्र से प्रेम का बर्ताव करें।"

— राजेन्द्र प्रसाद

91273
23-2-99

डा. राजेन्द्र प्रसाद चम्पारण में गांधीजी के सहयोगी के रूप में सार्वजनिक जीवन में पहली बार प्रवेश करके अपनी कार्य-कुशलता, सेवा-परायणता, बौद्धिक प्रखरता, सच्चाई, सहृदयता, सहज गाम्भीर्य और सौजन्यता के कारण सार्वजनिक सेवा के प्रतीक बन गए। वह स्वतंत्रता संग्राम के अग्रगामी नेता थे। अपने गुणों और सेवाओं के बल पर वह तीन बार कांग्रेस के अध्यक्ष, संविधान सभा के सभापति और फिर भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति का सर्वोच्च पद बारह वर्षों तक विभूषित करते रहे। राष्ट्रीय एकता, धर्मनिरपेक्षता तथा प्रजातंत्र के प्रहरी के रूप में सदा सजग रहे। ऐसे उच्चकोटि के राष्ट्रीय नेता अजातशत्रु राजेन्द्र प्रसाद की जीवनी इस पुस्तक में श्री वाल्मीकि चौधरी द्वारा अत्यंत रोचक शैली और सुबोध भाषा में प्रस्तुत की गयी है।

लेखक श्री वाल्मीकि चौधरी (जन्म 26 जुलाई 1921) छात्र अवस्था से ही स्वतंत्रता आंदोलन की ओर प्रवृत्त हुए तथा 1938 में सदाकत आश्रम में डा. राजेन्द्र प्रसाद के संपर्क में आये। तब से आप निरंतर डा. राजेन्द्र प्रसाद के जेल जीवन से राष्ट्रपति भवन तक सहयोगी रहे। भारत के प्रथम राष्ट्रपति के निजी सचिव, लोकसभा के सदस्य, खादी ग्रामोद्योग आयोग के सदस्य, एवं अनेक पुस्तकों के जाने-माने लेखक के रूप में वाल्मीकि जी विख्यात हैं।

Library IIAS, Shimla
H 923.154 R 138 C
00091273

रु० 8.50

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया